1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-5, अप्रैल-मई 2023, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
सांस्कृतिक अनुष्ठान का 26 वाँ वर्ष...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

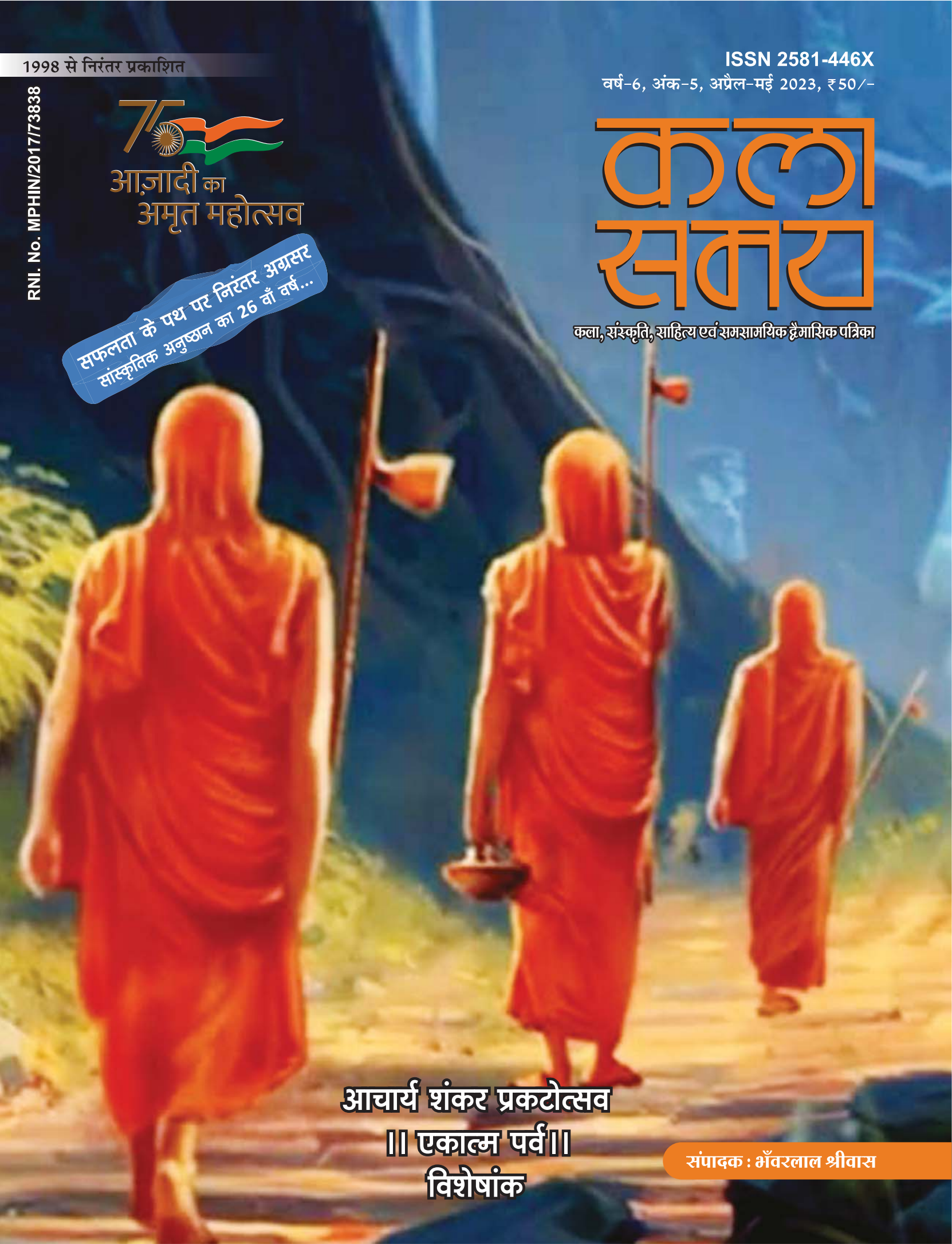

आचार्य शंकर प्रकटोत्सव
।। एकात्म पर्व।।
विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

कला समय प्रकाशन

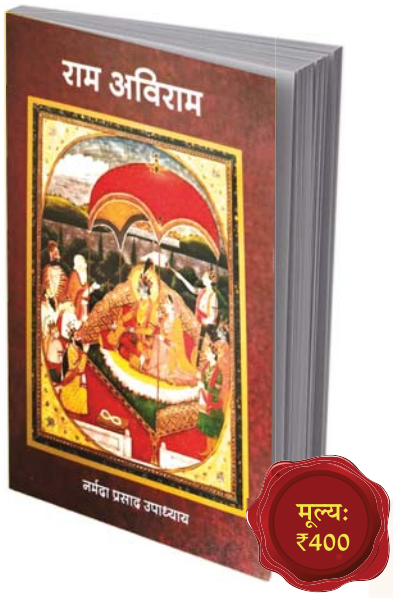

कला समय के गौरवपूर्ण प्रकाशन

राम अविराम

कला समय प्रकाशन की पहली प्रकाशित कृति है

'राम अविराम'

जिसमें राम के बहुआयामी स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है तथा विशेष रूप से भारतीय चित्रांकन परम्परा के परिप्रेक्ष्य में रामायण की चित्रांकन परम्परा को रंगीन चित्रों के माध्यम से कृति में विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस कृति के लेखक नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, ललित निबंधकार तथा विद्वान कलाविद् हैं।

थमे नहीं चरण

कला समय प्रकाशन की दूसरी प्रकाशित कृति है

'थमे नहीं चरण'

काव्य संग्रह का यह द्वितीय संस्करण की कृति के लेखक मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश', लेखक, सम्पादक, कवि एवं गीतकार है। इस कृति में अधुनातन भाव बोध एवं सबल भावोक्तियों की सफल अभिव्यक्ति है। तीव्र आत्मानुभूति को वैयक्तिक धरातल से उठाकर उसके समाजीकरण में लेखनी सर्वथा सफल रही है।

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-122

वर्ष-6, अंक-5, अप्रैल-मई 2023, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तांतेड
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

रेखांकन : विज्ञान व्रत

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

लक्ष्मीनारायण पयोधि

चेतन औदिच्य

अश्विनी कुमार दुबे

शिशिर उपाध्याय

सनत

जगदीश कौशल

डॉ. सुमन चौरे

डॉ. अनुपमा चौहान

इस बार

- **संपादकीय** 05
  संकल्प का आकार एकात्म धाम
- **यात्रा वृत्तांत**
  दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 07
- **अद्वैत-विमर्श**
  आधुनिक सभ्यता का संत्रास और .../ प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा 10
- **आलेख**
  ब्रजसंस्कृति : राष्ट्रीय संदर्भ / डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी 13
- **संगीत-चिंतन**
  थाट-राग पद्धति: / डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' 18
- **जनजातीय संस्कृति**
  जनजातीय काष्ठकला / लक्ष्मीनारायण पयोधि 21
- **कला-अक्ष**
  कुछ सवाल: कला की दुनिया से / चेतन औदिच्य 24
- **यादों का गुलदस्ता**
  मेरे दादा / डॉ. सुमन चौरे 27
  एक छाँव नीम की / शिशिर उपाध्याय 31
- **आलेख**
  झारा जनजाति : ढोकरा शिल्प के महानायक / सनत 33
- **एकात्म पर्व समारोह**
  आचार्य शंकर प्रकटोत्सव 36
- **एकात्म पर्व छाया-वीथि** 39
- **सिनेमा**
  शायरी का साहिराना फ़न / अश्विनी कुमार दुबे 47
- **भाषांतर**
  कवि हरमन हेस की कविताएं : मणि मोहन 51
  गीत: शिशिर उपाध्याय के गीत 52
  कविता : शिव मोहन सिन्हा की कविताएँ 53
  कविता : डॉ. राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' की कविता 54
  ग़ज़ल : विज्ञान व्रत की ग़ज़लें 55
- **आलेख**
  लोक संस्कृति / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 56
  निमाड़ में दीवी संग बेटी की बिदाई / शिशिर उपाध्याय 57
- **प्रसंग**
  संस्कृति और कला / वासुदेवशरण 59
- **आलेख**
  कला और साहित्य का अन्त:संबंध / डॉ. अनुपमा चौहान 60
- **पुस्तक समीक्षा**
  लोक उनकी स्मृतियों में टहलता है / सोमदत्त शर्मा 63
  सूर्यांश का प्रयाण / डॉ. प्रकाश बरतूनिया 66
  सा नो माता भारती भूर्विभासताम् / प्रो. महेश दुबे 69
  प्रदक्षिणा मीमांसा / प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता 70
- **सांस्कृतिक समाचार** 83
  आयोजन : विरासत को सहेजता महोत्सव 73
  समवेत : 78
  डॉ. जवाहर कर्नावट का शोध कार्य लिम्का बुक आफ रिकॉर्ड्स 2023 में शामिल / रोटरी क्लब पन्ना उदयपुर एवं एम. स्क्वायर प्रोडक्शन द्वारा आयोजित ज़ार अवॉर्ड्स में डॉ एस. के. अग्रवाल का सम्मान / अश्विनी कुमार दुबे की दो पुस्तकें 'भारत, इतिहास-संस्कृति-धर्म' और 'रास्ता इधर से भी है' का लोकार्पण
- **साक्षात्कार**
  पंडित रविशंकर जी का आर्शीवाद मेरे लिए / जगदीश कौशल 80
- **समय की धरोहर**
  पंडित किरण देशपाण्डे / जगदीश कौशल 82

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र एवं अंतिम आवरण चित्र** - कला समय | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** विज्ञान व्रत
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

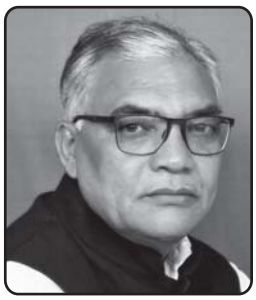

संकल्प का आकार एकात्म धाम

''वेदान्तसिद्धान्तनिरूक्तिरेषा, ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।
अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो, ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम्।।''

वेदान्त–सिद्धान्त कि यह घोषणा है कि ब्रह्म ही जीव है और सारा जगत भी केवल ब्रह्म ही है। उस अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म–रूप में स्थित हो जाना ही मोक्ष है। ब्रह्म अद्वितीय है– इस विषय में श्रुतियाँ प्रणाम हैं।

गुरु कौन ? वह जिसे वास्तविक सत्य का ज्ञान है तथा जो सतत अपने शिष्यों (अनुयायियों) के हित साधन में, उनके कल्याण में लगा रहता है। आदर्श गुरु एवं शिष्य का परस्पर सम्बन्ध का महत्व तब जाना जा सकता हैं, जब गोविन्द भगवतपाद एवं आदि शंकराचार्य,रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद, गुरु नानक एवं गुरु गोविंद सिंह जी के जीवन को देखते हैं। तो लगता है कि आध्यात्मिक विकास में गुरु महत्वपूर्ण हैं। गुरु शिष्य का मार्गदर्शन करता हैं। जो गुरु ज्ञान के प्रकाश को उद्दीप्त करता हैं। उसकी कोई तुलना नहीं है भले ही पारस पत्थर लोहे को सोने में परिवर्तित कर देता है, पर वह दूसरे पारस पत्थर को सोने में नहीं बदल सकता, जबकि गुरु शिष्य में ज्ञान का दीपक वैसे ही जला देते हैं, जैसे हम एक दीपक से दूसरा दीपक जलाते हैं। ऐसा शिष्य पुनः अनेको मनुष्य में ज्ञान का दीपक जलाने की क्षमता रखता हैं। कबीरदास, पुरंदरदास, कनकदास, तुकाराम, अमीर खुसरो जैसे महान संत तथा सूफी कवियों की रचना में गुरु की महिमा का गुण गान किया गया है। यही गुरु की महान शक्ति है। भारत की आध्यात्मिक शक्ति को अविरल प्रवाह को सशक्त रूप से प्रवाहमान बनाए रखने में जगतगुरु आदि शकंराचार्य जी के कार्य एवं दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अद्वैत दर्शन सम्पूर्ण विश्व को धर्म, पंथ, रंग, जाति, लिंग, प्रजाति भाषा आदि की विविधताओं से परे एक सूत्र में बाँधने का दर्शन है। आदि शंकराचार्य ने भारत को सांस्कृतिक एकता में निबद्ध करने का महान कार्य किया।

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की प्रेरणा और संकल्प से 9 फरवरी 2017 को ओंकारेश्वर में आदि शंकराचार्य का पावन स्मरण के साथ ही आदि शंकराचार्य की भव्य प्रतिमा की स्थापना किए जाने की घोषणा की थी। इसी कड़ी में आदि शंकराचार्य से जुड़े इन चार स्थान– ओंकारेश्वर, उज्जैन, पंचमठा(रीवा) एवं अमरकंटक से एकात्म यात्रा का शुभारंभ हुआ। दिसम्बर 2017 से 22 जनवरी 2018 तक चलने वाली यात्रा में 140 जनसंवाद हुए 108 फीट ऊँची अष्ट धातु की विशाल प्रतिमा के निर्माण के लिए समाज के सभी वर्गो से सांकेतिक रूप से धातु व मिट्टी संग्रहण किया गया। 22 जनवरी 2018 को भूमि पूजन की सृजनात्मक संकल्पना की यह मुख्यमंत्री श्री चौहान की दृष्टि की विराटता धर्म, दर्शन, और नैतिकता के प्रति आस्था और मानवीय मुल्यवत्ता का अनुपम गुण भी है।

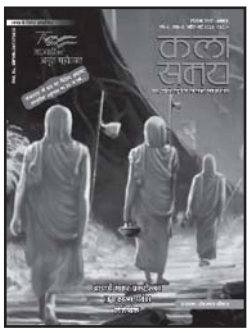

इस ''एकात्म यात्रा का मकसद सिर्फ अद्वैत वेदांत दर्शन में प्रतिपादित जीव, जगत एवं जगदीश के एकात्म बोध के प्रति जन–जागृति लाने के साथ ही आदि गुरु शंकराचार्य के अतुलनीय अवदान के संबंध में जन–जागरण और सिद्ध क्षेत्र ओंकारेश्वर में आदि शंकराचार्य की प्रतिमा के लिए जन सहयोग के रुप में धातु संग्रहण भी है। इसके पीछे आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास का अहम मकसद यह भी था कि

औंकारेश्वर को विश्व स्तरीय वेदांत दर्शन केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना। इतना ही नहीं यह विश्व को विभिन्नता से परे एक सूत्र में बाँधने का दर्शन है।

महापुरूषों की कीर्ति किसी एक युग तक सीमित नहीं रहती। उनका लोक हितकारी चिंतन कालजयी होता है और युगों-युगों तक समाज का मार्गदर्शन करता है। आदि शंकराचार्य हमारे ऐसे ही एक प्रकाश स्तम्भ है जिनकी जयंती वैशाख शुक्ल पंचमी को मनाई जाती हैं। शंकराचार्य ने अपने 32 वर्ष के अल्प जीवन में ही पूरे भारत की तीन बार पद यात्रा की और अपनी अद्‌भुत आध्यात्मिक शक्ति और संगठन कौशल से ऐसा कार्य किया जिसे हमारी कई पीढ़ियाँ आभारी रहेगी। आद्य शंकराचार्य का आज से लगभग 1200 वर्ष पूर्व यानी 792 ईश्वी में केरल के कालड़ी नामक स्थान से मध्यप्रदेश में नर्मदातट पर ज्ञान प्राप्ति के लिए आये थे। उन्होंने ओंकारेश्वर के पास गुरु गोविंदपादाचार्य से ज्ञान प्राप्त किया। मध्यप्रदेश में ही उन्होंने 'अद्वैत-सिद्धांत' का प्रतिपादन किया मध्यप्रदेश में ही शिक्षित होकर उन्होंने अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए आचार्य शंकराचार्य ने देश को संगठित करने के लिए देश के चारों कोनों में एक-एक मठ की स्थापना की। सबसे पहले उन्होंने दक्षिण दिशा में तुंगभद्रा नदी के तट पर ''शृंगेरी '' मठ की स्थापना की। यहाँ के देवता आदिवाराह देवी शारदाम्बा, वेद यजुर्वेद और महावाक्य ''अहं ब्रह्मास्मि'' हैं। इसके बाद उन्होंने उत्तर दिशा में अलकनंदा नदी के तट पर बदरिकाश्रम (बद्रीनाथ) के पास ज्योतिर्मठ की स्थापना की जिसके देवता श्री मन्नारायण तथा देवी श्री पूर्णगिरि हैं। यहाँ के संप्रदाय का नाम आनंदवार वेद 'अर्थवेद' तथा महाकाव्य ''अयमात्मा ब्रह्म' हैं। पश्चिम में उन्होंने द्वारकापुरी में शारदा मठ की स्थापना की जहाँ के देवता सिद्धेश्वर, देवी भद्रकाली वेद सामवेद और महाकाव्य ''तत्वमसि'' हैं। उधर पूर्व दिशा में जगन्नाथ पुरी के पास महानदी के तट पर गोवर्धन मठ की स्थापना की जहाँ के देवता जगन्नाथ, देवी विशाला, वेद 'ऋग्वेद' और महावाक्य 'प्रज्ञान ब्रह्म' हैं। इस प्रकार शकंराचार्य के अपने सांगठनिक कौशल से संपूर्ण भारत को धर्म एवं संस्कृतिक के अटूट बंधन में बाँधकर विभिन्न मत-मतांतरों के माध्यम से सामंजस्य स्थापित किया।

मुख्यमंत्री श्री चौहान जी का लिया गया संकल्प ''एकात्मक धाम'' ओंकारेश्वर में आकार ले रहा हैं। 15 अगस्त 2023 तक 108 फिट ऊँची विशाल प्रतिमा का कार्य अंतिम चरण में है। दूसरे चरण का कार्य वर्ष 2024 अगस्त तथा पूर्ण होने का लक्ष्य न्यास ने रखा हैं। 'एकात्म धाम' में एकता की मूर्ति और एकता का अद्वैत के कालातीत संदेश का एक जीवंत अवतार महान आचार्य शकंराचार्य द्वारा प्रचारित वेदांत है। ओंकारेश्वर में अद्वैत लोक संग्रहालय होगा। अद्वैत वेदांत का संदेश प्रदर्शनी गैलरी, अद्वैत नर्मदा विहार, लेजर-एंड-साउंड शो, माया-वेदांत व्याख्या केन्द्र, वाइड स्क्रीन थियेटर, पंचायतन मंदिर, अद्वैत कलाग्राम, अन्नपूर्णा भोजन शाला, निदिध्यासन केंद्र सहित आचार्य शंकर इंटरनेशनल इंस्टीटयूट ऑफ वेदांत होगा। यह अद्वैत वेदांत के अध्ययन और प्रचार के लिए समन्वय केंद्र अनुसंधान केंद्र और संसाधन केंद्र भी होगा। इसी के साथ आचार्य पद्‌मपाद अद्वैत दर्शन केंद्र आचार्य हस्त मलका अद्वैत विज्ञान केंद्र, आचार्य सुरेश्वर अद्वैत सामाजिक विज्ञान केंद्र। आचार्य टोटक अद्वैत साहित्य, संगीत और कलाकेंद्र, महर्षि वेद व्यास अद्वैत पुस्तकालय, आचार्य गौडपाद, अद्वैत विस्तार केंद्र, आचार्य गोविंद भगवतपाद गुरुकुल एवं शारदा मंदिर आकार ले रहा है। जो वेदांत-दर्शन का एक अद्वितीय केंद्र होगा इस सम्पूर्ण प्रकल्प का नाम ''एकात्म धाम'' होगा। इसके पीछे उद्देश्य ओंकारेश्वर को एकात्मता का वैश्विक केंद्र बनाया जाना है। इस तरह हमारा ओंकारेश्वर दुनिया को देगा एकात्मता का संदेश ''स्टैच्यू ऑफ वननेस'' स्मारक दुनिया में अपने तरह का अध्यात्म केंद्र होगा।

यही अद्वैत वेदांत है जिसे ज्ञानी और वैज्ञानिक सहर्ष स्वीकार कर रहें हैं, क्योंकि उनकी खोज में भी यही ज्ञात हुआ है कि सारा संसार एक से ही बना है।

- भँवरलाल श्रीवास

■

यात्रा वृत्तांत

दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल जहाँ शांति और ताज़गी का अनुभव होता है

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

वरिष्ठ ललित निबंधकार तथा कलाविद नर्मदा प्रसाद उपाध्याय इन दिनों दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल की यात्रा पर है। उनकी यह यात्रा कई तरह से महत्वपूर्ण और रूचिकर है। उनके द्वारा अपने यात्रा वृत्तांत को उन्होंने अपनी सुक्ष्म कला दृष्टि से किस तरह देखा उसका अंश आपके समक्ष प्रस्तुत है।

– संपादक

सूरज तो नित्य निकलता है अपने रथ पर, अपनी गति से,अपने निश्चित पथ पर लेकिन हम उसके रथ के रास्ते को अपने अनुसार बदल देते हैं अपनी अपनी घड़ियों के कांटों से और इसी वज़ह से जब भारत में सुबह के सात बजते हैं तब दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल में सुबह के साढ़े दस बजते हैं।

चार दिन पहिले ही सियोल के समय के अनुसार सुबह के साढ़े दस बजे यहां बेटी के पास पहुंचे हैं। संयोगवाश जहां रुके हैं उसके सामने ही पुरातात्विक वस्तुओं की दुकानें हैं जहां मन की वस्तुएं हैं।

हम दक्षिण कोरिया और सियोल के बारे में अपेक्षाकृत कम जानते हैं लेकिन यह जानने योग्य देश और शहर है। यहां कोर –यो वंश का शासन था इसलिए इसे कोरिया कहा गया। पश्चिम में चीन,पूर्व में जापान और उत्तर में उत्तर कोरिया से घिरे इस देश का चीन और जापान से निकट संपर्क रहा। जापानी इसे चोसेन कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है सुबह की ताज़गी वाला देश या शांत सुबह की भूमि और सियोल की भूमि को स्पर्श करते इसी शांति और ताज़गी का अनुभव होता है। इस देश पर निरंतर आक्रमण भी हुए जिसके कारण इसने एकांतिता को अपना लिया इसलिए इसे 'यति देश'(Hermit Kingdom) भी कहा जाता है।

हान नदी के किनारे बसे सियोल नगर की स्थापना के बारे में यहां के इतिहासकारों का दावा है कि इसकी स्थापना 18वीं सदी ईसा पूर्व कोरिया के तीन साम्राज्यों में से एक बाकेजो साम्राज्य के द्वारा की गई थी तथा यह शहर जोसोन राजवंश के दौरान कोरिया की

राजधानी बना। इसे अनेक नामों से विभिन्न युगों में पुकारा जाता रहा। कहा जाता है कि यह सेरनेओल नामक कोरियाई शब्द से निकला है तथा जापान के आधिपत्य के समय इसे 'गिओंगसेंग' के नाम से पुकारा जाता रहा। इतिहास के अनेक अध्यायों से गुजरते

जब सन 1945 में इस राष्ट्र ने जापान से आज़ादी हासिल की तब इसका नाम सियोल हो गया। इसकी परिधि में इंचियोन महानगर तथा ग्योंगबी प्रांत शामिल हैं तथा इसे अल्फा सिटी का दर्जा प्राप्त है। यहां दो हवाई अड्डे हैं जिनमे से बड़ा हवाई अड्डा इंचियो है जो एक द्वीप पर अवस्थित है। सियोल की आबादी लगभग एक करोड़ है, भाषा कोरियाई है जो हंजा और हंगुल दोनों लिपियों में लिखी जाती है तथा यहां सैमसंग, हुंडई, एल जी और किया जैसी कंपनियों के मुख्यालय हैं। हम जहां हैं वहां से एक सड़क पार सैमसंग के मालिक अपने विशाल भवन में रहते हैं। यहीं पास में वह गली भी है जहां वह भगदड़ मची थी जिसमें डेढ़ सौ से अधिक लोग कुचले गए थे। सियोल में चार विश्व विरासतें भी हैं।

यों बहुत कुछ दक्षिण कोरिया और सियोल के बारे में लिखा जा सकता है लेकिन विशेष है यहां की संस्कृति, प्रकृति और इनके स्वभाव से परिचित होना,उनमें घुलने मिलने का यत्न कर इस देश की आत्मा को अपनी आत्मा से आत्मसात करना।

यहां जिस दिन आए उसी शाम को एक प्रतिभाशाली भारतीय कलाकार श्रीमती मालिनी श्रीवास्तव के अंकनों को देखकर विस्मित हो जाना पड़ा। कृष्ण प्रसंगों पर केंद्रित उनके अंकन विस्मित करते हैं। वृंदावन की कन्हाई शैली, वहां की देशज शैली और इस शैली के नाथद्वारा शैली से हुए समन्वय से बने चित्र अदभुत हैं। उन पर पृथक से एक मोनोग्रॉफ बना रहा हूं। यहां उनके द्वारा निर्मित इसी समन्वित कलम का बांके बिहारी का अंकन प्रस्तुत है।

दूसरे दिन एक शानदार शो में जाना हुआ, शरलक होम्स की कथाओं पर आधारित एक नाटक जिसमें मेरे नाती शरण्य ने वॉटसन के पात्र का सजीव अभिनय किया। यहां नाटक टिकिट लेकर दिखाए जाते हैं तथा पेशेवर कंपनी कलाकारों का चयन करती है और महीनों की रिहर्सल के बाद प्रदर्शन होता है। यहीं नामसन टावर देखा। गगनचुंबी टावर जिससे पूरा सियोल शहर दिखाई देता है और नामसन पार्क देखा जहां के फूलों की शोभा अप्रतिम है।

यहां मैं अकादमिक विमर्श के लिए भी आया हूं। यह विस्मित करने वाला तथ्य होगा कि यहां के हानकुक विश्वविद्यालय में हिंदी बड़े चाव से पढ़ी और पढ़ाई जाती है। यहां के एक सेवानिवृत्त प्राध्यापक डॉक्टर ऊ जो किम ने शांतिनिकेतन से निराला के कृतित्व पर प्रोफेसर रामसिंह तोमर के मार्गदर्शन में पी एच डी की है। उनके अतिरिक्त अन्य हिंदी के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों के संपर्क में हूं। यहां अनेक विमर्श सत्र होंगे। यहां भी भारतीय कला के प्रति कलाकारों और कला के विद्वानों की गहरी रुचि है।

पूर्वी एशियाई देश होने के कारण हमारी परंपराओं की जानकारी यहां के विद्वानों को है। ईस्वी सन 48में अयोध्या की राजकुमारी यहां आईं और यहीं उनका विवाह हुआ और वे रानी

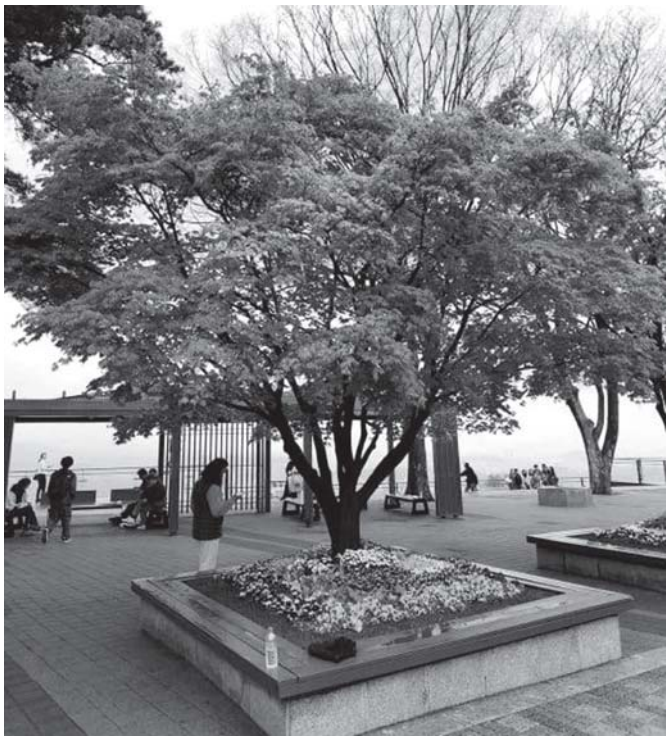

सुरिरत्ना के नाम से प्रख्यात हुई। यहां के गिमझे नामक शहर में उनसे जुड़े स्मारक हैं। उनकी समाधि है। यह जानना भी रोचक होगा कि विश्व में सबसे पहिले धातु के अक्षरों से प्रिंटिंग कोरिया में आरंभ हुई। इसका प्रमाण पिछले दिनों पेरिस में अवस्थित बिबलोथिक नैशनल लाइब्रेरी में, जो विश्व की सबसे बड़ी लाइब्रेरी में प्रदर्शित बारहवीं सदी की प्रिंटेड कृति है। यहां और भी इतना है कि उसका विवरण अनुभवों के आधार पर देने का यत्न करूंगा।

इन दिनों यहां वसंत है। यदि टियूलिप और मेपल की बहार है तो ठंड में निसर्ग के स्वर्ग से साक्षात्कार कराने वाले चेरी ब्लॉसम भी अब ढलान पर होते हुए भी मोहते हैं। वसंत कहीं भी हो उसे ऋतुराज यों ही नहीं कहा जाता।

यहां के फूल बहुत मोहक हैं। फूल को कोरियन भाषा में कक्कोट kkot कहा जाता है। यहां का राष्ट्रीय पुष्प है मुगुंघावा, Mugunghwa, जो अमरपुष्प के नाम से विख्यात है इसे Rose of sheron के नाम से भी जाना जाता है। यह गुलाबी रंग का फूल होता है जिसमें गाढ़े बैंगनी रंग की आंख बनी होती है। इस पुष्प के नाम पर एक ट्रेन भी फैशन कोरिया में चलती है। चेरी ब्लॉसम से तो हम सभी प्राय: परिचित हैं। गुलाबी रंग के इन फूलों से भरपूर शहर ऐसा लगता है जैसे स्वर्ग की गुलाबी शोभा की अगणित पालकियां धरती पर जगह जगह उतर पड़ी हों। ऐसे अनेक पुष्प हैं जिनके नाम गिनाना विस्तार का विषय है। लेकिन इनमें से कुछ हैं, जंगमी (गुलाब), सेनिक्य साका, जो एक दुर्लभ बैंगनी पुष्प है, मेहवा, हेबराकी, सांसीयु, युकेकवाट (सरसों का फूल), तरह तरह के रंगों वाले टियूलिप और बोगनबेलिया की तरह के अनेक पुष्प। (हिंदी में लिखने से उनके नामों में त्रुटि संभव है) इनमें सुगंधित पुष्प कम हैं लेकिन लाल, गुलाबी, पीले और बैंगनी फूल बहुत हैं जिन्हें करीने से सजाया जाता है और बगीचों में उन्हें तरतीब देकर उगाया जाता है। यहां फूलों के उत्सव होते हैं जिनके माह और वे गांव नियत रहते हैं जहां इन उत्सवों को मनाया जाता है। यहां फूलों को भेंट करने के पीछे भी मंशा निहित होती है, जैसे नारंगी रंग के गुलाब को भेंट करने का आशय पहिले प्यार को प्रकट करना है तो गुलाबी रंग के गुलाब को भेंट करने का अर्थ अपनी प्रसन्नता व्यक्त करना है। यह मैंने पेरिस में भी देखा था और अब हमारे यहां भी वेलेंटाइन डे जैसे दिवस पर गुलाब भेंट कर प्रेम को प्रकट किया जाता है। लेकिन यहां के लोग फूलों से बेहद प्यार करते हैं और प्रत्येक फूल को किसी भाव से जोड़कर उसे अपनी जीवनचर्या से भी जोड़ लेते हैं।

यहां कुछ चित्र यहां की नैसर्गिक शोभा,यहां के भव्य भवनों और यहां के सर्वाधिक ऊंचे नामसम टावर तथा नामसम पार्क की दृश्यवाली प्रस्तुत हैं.....।

– लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

■

आधुनिक सभ्यता का संत्रास और चराचर की एकात्मताबोधी अद्वैत-दृष्टि

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

भारत का आध्यात्मिक व दार्शनिक उत्कर्ष तथा सार्वभौमिक एकात्मता की चेतना से अनुप्राणित विश्वजनीन संस्कृति और सभ्यता के अभ्युदय की सम्भावना भगवत्पाद आचार्य शंकर के अद्वैतवादी तत्त्वदृष्टि में ही गोपित है। आज पूरी दुनिया के लिए इस अद्वैत बोध और सार्वभौमिक एकात्मता के संदेश का साभ्यतिक मूल्य पहले की अपेक्षा अधिक औचित्यपूर्ण हो गया है। आधुनिक सभ्यता का 'प्रकृतिजयी' मनुष्य ने प्रकृति को वश में कर लिया है या उसके बहुत ही समीप है; परन्तु उसका अपने ऊपर प्रारम्भिक अधिकार भी नहीं है। इसके परिणाम विनाशकारी हैं। स्थिरता और सुरक्षा के किसी भी दिखावे के साथ व्यवस्थित जीवन अन्दर से संकटापन्न हो गया है। हमने संसार को तो पा लिया, परन्तु अपनी आत्मा को खो दिया है। आज हम साभ्यतिक विकास की जिस दहलीज पर खड़े हैं और पूरी मानवता जिन अस्तित्वात्मक समस्याओं का ग्लोकल रूप में सामना करने के लिए विवश है वह सबके सब जीवन और जगत् की बायनेरी समझ की आवश्यक निष्पत्तियाँ हैं। यह परस्पर विरोधी भेदों के संघर्ष को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाली घोर द्वैत-दृष्टि है। इस समझ ने पूरी दुनिया को अतिरेकों की टकराहट और संघर्ष में बदल कर रख दिया है। अस्तित्व मात्र की मौलिक एकात्मता का स्वर ही कहीं गुम हो गया है। अनगिनत पहचानों ने आज के मनुष्य को इस तरह जकड़ दिया है कि उसे अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान ही नहीं रह गयी है। ऐसे समस्याग्रस्त श्वेतकेतु को वास्तव में 'तत्त्वमसि' के अद्वैतबोध से ही त्राण प्राप्त हो सकता है। क्या यह किसी विडम्बना से कम है कि आधुनिक विज्ञान जो माइण्ड और मैटर, मनुष्य और प्रकृति के अन्तहीन द्वैत पर आधारित है वह अपने चमत्कारिक विकास के बावजूद भी विशाल, जीवन्त और रहस्यपूर्ण मानवेतर संसार से आत्मीय सम्बन्ध के सूत्र और आत्मीय सम्प्रेषण की भाषा को खोज पाने में अब तक असफल ही रहा है।

"पूज्यपाद आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्त मानवमात्र के लिए जाति, लिंग, सम्प्रदाय, देश और काल से निरपेक्ष होकर 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' की घोषणा करता है, तब यह सार्वभौमिक एकात्मता का आदर्श वाक्य बन जाता है। एक ऐसा आदर्श वाक्य जिस पर आधारित जीवन दृष्टि पूर्व और पश्चिम, सभ्य और असभ्य, शोषक और शोषित, प्रकृति और संस्कृति, स्त्री और पुरुष, उपभोग्य एवं उपभोक्ता तथा जाति, राष्ट्र आधारित द्वैत जनित हिंसा एवं अन्याय को निर्मूल कर सकती है। अद्वैत सभ्यता बोध मानवजाति का भविष्य और यह धरती को स्वर्ग बनाने का मंत्र भी है।"

वस्तुत: मानवीय संसार का मानवेतर संसार से अलगाव-दुराव ही आधुनिक सभ्यता का सबसे त्रासद आयाम है। परन्तु अस्तित्व मात्र की मौलिक एकता में विश्वास करने वाली अद्वैतवादी जीवन-दृष्टि के लिए इस अलगाव-दुराव पर ही विश्वास करना मुश्किल है, जिसमें जीवन के रूप से दूसरे रूप के बीच पुनर्जन्मों और कायान्तरों की एक अटूट श्रृंखला है और जहाँ हर जीव के भीतर दूसरे के रहस्योद्घाटन की कुंजी छुपी हुई है। मानो हर एक पिण्ड में ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। अत: आज की महती आवश्यकता यह है कि आधुनिक सभ्यता जिस प्रकार के ज्ञान को उत्पादित और मानकीकरण कर जीवन और जगत् को संचालित कर रही है उससे

अन्ततः भेद, परायेपन, संघर्ष और हिंसा का बढ़ना स्वाभाविक है। आज की सभ्यता में पनप रही इन दुष्प्रवृत्तियों पर बाह्यनियंत्रण से थोड़े समय के लिए अंकुश तो लगाया जा सकता है लेकिन स्थायी समाधान के लिए जीवन के हर एक क्षेत्र में ऐसे ज्ञान सृजन की प्रक्रिया को बढ़ावा देना होगा जो दुनिया को बाँटने के बजाय जोड़े, चराचर की एकात्मता की टूटी हुई कड़ियों को अद्वैत के सूत्र में पिरोये।

जिस तरह मानवता एक अखंड इकाई है, यह देश, जाति और सम्प्रदाय की सीमाओं में न तो आबद्ध है और न ही विभाजित, उसी तरह ब्रह्म भी अखंड सत्ता है। अखंड इकाई होने पर भी मानवता किसी विशिष्ट मनुष्य में भी प्रकट होती है परन्तु इससे वह निःशेष नहीं हो जाती; उसी तरह ब्रह्म की प्रतीति भी विशिष्ट में होती है और वह अविशिष्ट सत्ता के रूप में भी विद्यमान रहता है। पूज्यपाद आचार्य शंकर का अद्वैत वेदान्त मानवमात्र के लिए जाति, लिंग, सम्प्रदाय, देश और काल से निरपेक्ष होकर 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' की घोषणा करता है, तब यह सार्वभौमिक एकात्मता का आदर्श वाक्य बन जाता है। एक ऐसा आदर्श वाक्य जिस पर आधारित जीवन दृष्टि पूर्व और पश्चिम, सभ्य और असभ्य, शोषक और शोषित, प्रकृति और संस्कृति, स्त्री और पुरुष, उपभोग्य एवं उपभोक्ता तथा जाति, राष्ट्र आधारित द्वैत जनित हिंसा एवं अन्याय को निर्मूल कर सकती है। अद्वैत सभ्यता बोध मानवजाति का भविष्य और यह धरती को स्वर्ग बनाने का मंत्र भी है।

परन्तु हमारे समय की अनेक विडम्बनाओं में से एक विडम्बना यह है कि हमने मानवता को उदारवादी, मार्क्सवादी और भौतिकवादी चश्में से विभाजित कर देखा तथा अद्वैत वेदान्त को जीवन दर्शन बनाने के बजाय उसे जीव, ब्रह्म, माया और लोकेत्तर सत्य तक सीमित कर दिया। पश्चिमी राष्ट्रों ने मानवता को जहाँ राजनीतिक हित संवर्धन का आधार बना लिया और 'श्वेत भार' (White Men's Burden) का सिद्धान्त गढ़ा वहीं भारत में वेदान्त पर पलायनवादी दर्शन होने के आक्षेप भी लगे। किन्तु जैसे-जैसे मानवजाति के संत्राश बढ़ते जा रहे हैं और क्वान्टम अभियांत्रिकी तथा नैनोटेक्नोलॉजी ज्ञान के नये क्षेत्र को अनावृत कर रहे हैं, वैसे-वैसे सार्वभौमिक-एकात्मता-आधारित जीवन-दर्शन की प्रासंगिकता तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। तकनीकी कारणों के अतिरिक्त आर्थिक क्रिया कलापों और इससे बढ़ती हुई परस्पर निर्भरता ने भी सार्वभौमिक-एकात्मता-आधारित वेदान्त जीवन-दर्शन की प्रासंगिकता को स्थापित किया है।

वस्तुतः डार्विन के उद्विकासवाद पर आधारित पश्चिम का जीवन दर्शन जो आज उद्योगवाद, उपभोक्तावाद, हिंसा और पर्यावरण विनाश तथा राष्ट्रों के मध्य सतत् प्रिजनर्स डायलेमा के रूप में विश्व सभ्यता का आकार ग्रहण कर लिया है वह भ्रान्त सत्य या अर्ध सत्य अथवा एकांगी सत्य पर आधारित है। इसे ही पश्चिमी विचारक विलियम ब्लेक सिंगुलर विजन और लेविनास एक तरह की जातीय समग्रता कहने लगे हैं। लिंग, जाति, सम्प्रदाय, देश और काल से सीमित सत्य और इसी से परिभाषित धर्म और मानवता निर्भ्रांत नहीं होती है। यह हो जाने अर्थात् बिकमिंग का सत्य होता है, बीइंग का नहीं। उत्तर-आधुनिकतावाद, उदारवाद, मार्क्सवाद, नारीवाद या स्त्री-विमर्श ने इसी को सत्य अपने-अपने तर्कों से अपने संसार का निर्माण किया है और इसी तरह के दूसरे सत्य से नवनिर्माण का प्रस्ताव भी किया है। फलतः वे एक भ्रान्त सत्य से लड़कर दूसरे भ्रान्त सत्य की स्थापना के उपक्रम बनकर रह गए हैं। इसका सार एक शक्ति समीकरण को तोड़कर दूसरे शक्ति समीकरण की स्थापना के रूप में प्रकट होता रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हम एक पीड़ा से मुक्ति के प्रयास में दूसरी तरह की पीड़ा की आधारभूमि तैयार करते जा रहे हैं। जबकि ऐसा नहीं है कि निर्भ्रान्त सत्य की खोज के प्रयास नहीं हुए हैं या नहीं हो रहे हैं। कांट जिसे परपेचुअल पीस कहते हैं, टैगोर जब यह कहते हैं कि चैतन्य सत्ता के अतिरिक्त और कोई सत्ता ही नहीं है और गाँधी जब कहते हैं कि सतत् प्रेम की अभिव्यक्ति अहिंसा है, तब वे निर्भ्रांत सत्य की ही घोषणा कर रहे होते हैं।

निर्भ्रांत सत्य बिलकुल हमारे आस-पास ही है कि पृथ्वी पर हमारा साझा अस्तित्व है। इस साझेदारी में प्रकृति जगत् भी है और जीव जगत् भी। जो हम सब में साझा है वह ब्रह्म है। स्थूल में भी जो सूक्ष्म है। सूक्ष्म में भी जो चैतन्य है। चैतन्य में भी जो सत्य है। सत्य में भी आनन्द है और आनन्द में भी जो नाद है तथा नाद में भी जो दृष्टा है। वही एक में भी है और वही सब में है। वह आसक्त भी और विरक्त भी है। वही स्वतंत्र और वही परतंत्र भी है। वही हमारे ''मैं'' का कारण और वही हमारे ''हम'' का सर्जक भी है। जब हम सर्वथा वही हैं तब हम भेद बुद्धि से कैसे ग्रसित हो जाते हैं और कैसे इससे मुक्त हो सकते हैं, यह प्रतिपादित करते हुए अद्वैत वेदान्त सार्वभौमिक एकात्मता की जीवन दृष्टि स्थापित करता है। यह मानव को पूर्ण बनाने का जीवन-दर्शन है। वस्तुतः पूर्णता में विकार नहीं होता और यदि हमारी सभ्यता में विकार है तो इसका तार्किक तात्पर्य यह भी है कि वह पूर्ण नहीं है। किन्तु विकास का तात्पर्य पूर्णता की

प्राप्ति ही होती है और पूर्णता विभाजन में नहीं है बल्कि पूर्णता अद्वैत में है। वह पूर्णता इस जगत् और सृष्टि को इसके सृष्टिकर्ता से अलग करके देखने में नहीं है जैसा कि सेकुलर विश्वदृष्टि करती है। पूर्णता की वह दृष्टि न्यूटानियम मैकेनिक्स में भी नहीं थी जिसकी ओर क्वाण्टम अभियान्त्रिकी ने संकेत किया है। वह पूर्णता इस वेद वाक्य में है कि ''तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'' अर्थात् वह परब्रह्म इस सृष्टि की रचना करके इसमें प्रविष्ट भी है। इसी को ईशावास्योपनिषद में **''ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'' के रूप में सन्दर्भित किया गया है।**

पूज्यपाद आचार्य शंकर जब माया की व्याख्या करते हैं तब वे कहते हैं कि माया विक्षेपणी शक्ति है जो स्वयं ब्रह्म को व्याप्त नहीं करती बल्कि जीवन इससे विमोहित होता है और जगत् को ही या तो ब्रह्म समझ लेता है या फिर जगत् और ब्रह्म में द्वैत देखता है। इस द्वैत बोध की भूमि पर ही लिंग, जाति, सम्प्रदाय, देश आदि आधारित पहचान और पहचान जनित संघर्ष उत्पन्न होते हैं। द्वैत बोध हमारे आचरण एवं व्यवहार में विकार भी उत्पन्न करता है। यह द्वैत ही स्व और पर का बोध उत्पन्न करता है और इस बोध से ही भ्रष्टाचार, हिंसा, वर्चस्व आदि नाना प्रकार के विकार जन्म लेते हैं। इतना ही नहीं, यह द्वैत बोध उच्चतर मानवीय चेतना के विकास के दरवाजों को भी बंद कर देती है। इस द्वैत बोध के कारण ही हमने प्रकृति को साधन के रूप में देखा और इस द्वैत बोध के कारण ही आज दुनिया में घनघोर असमानता व्याप्त है। द्वैत बोध से अहम का जन्म होता है। अहम सुरक्षा की दुविधा का कारण बनता है और इसके समाधान के लिए हिंसात्मक शक्ति संचय की होड़ लग जाती है। आज हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं जिसे हम विकास कहते हैं और साथ ही सुरक्षा उपायों पर सर्वाधिक खर्च भी करते हैं। अद्वैत वेदान्त इस द्वैत को ही निर्मूल करने का विचार प्रतिपादित करता है। आज हमें वेदान्त आधारित सार्वभौमिक एकात्मता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहले के किसी भी युग की अपेक्षा अधिक प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें वेदान्तिक मनीषियों की आवश्यकता है। ऐसा कोई भी विशेषज्ञ जो समस्त जगत् में एक देदीप्यमान चैतन्य सत्ता की उपस्थिति को स्वीकार करता हो और यह अनुभव करता हो कि वही सत्ता समस्त चराचर में व्याप्त है, वही ऐसा वेदान्तिक मनीषी है। इस दृष्टि से हमें वेदान्तिक शिक्षक, वेदान्तिक, अभियन्ता, वेदान्तिक राजनेता, वेदान्तिक प्रशासक एवं वेदान्तिक विद्यार्थियों को तैयार करने की जरूरत है। यदि इस मार्ग में हम जल्दी से चल पड़े तो यह सम्पूर्ण मानवजाति के लिए पथ-प्रदर्शक साबित होगा और इससे हम एक श्रेष्ठ समाज और सभ्यता का भी निर्माण कर सकेंगे।

लेखक- विद्वान साहित्यकार हैं।
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

स्वामिनी धन्यानन्द सरस्वती

स्वामिनी धन्यानन्द सरस्वती का जन्म कोटडा पीठा, जिला अमरेली (गुजरात) में हुआ। वर्ष 1987 में आपने रसायनशास्त्र में स्नातक तथा 1989 में बी.एड. किया। आपने स्वामी दयानन्द सरस्वती से 1990 में ब्रह्मचर्य दीक्षा तथा 2002 में संन्यास दीक्षा ग्रहण कर गुरु चरणों में रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया। आपकी सरल और सहज वाणी गुरु-शिष्य परम्परा की माला में चमकते मोती के समान है, जो ज्ञान के प्रभाव को प्रवाहमान रखती है। आप पिछले 20 वर्षों से समाज के सभी वर्गों को शास्त्र सिखाने की अगाध मेहनत कर रहीं हैं। आपके द्वारा गीता एवं अन्य शास्त्रों पर ऑनलाइन व्याख्यान दिये जा रहे हैं। राजकोट, वडोदरा और मुंबई में नियमित ज्ञानयज्ञ चल रहा हैं। आप आर्ष विद्या मंदिर आश्रम, राजकोट की सह-संस्थापक और प्रधानाचार्या हैं।

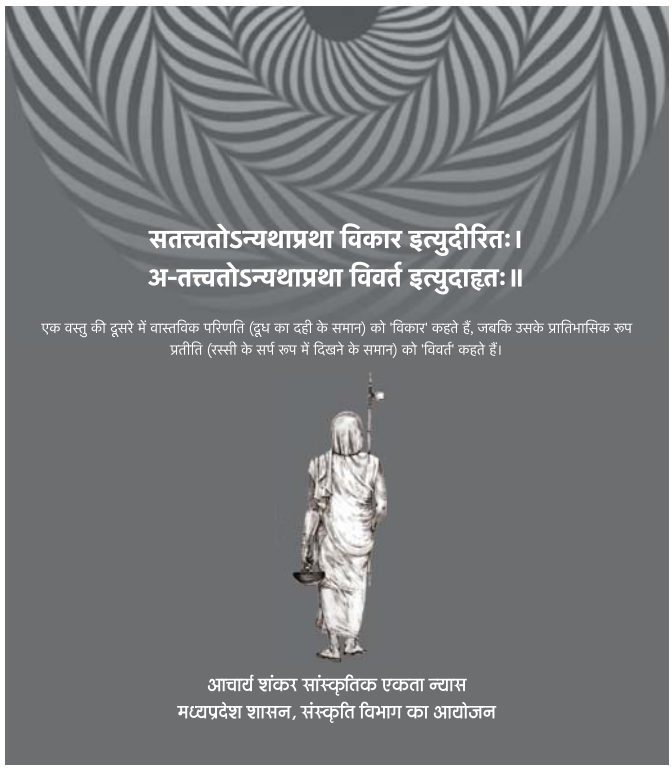

आलेख

ब्रजसंस्कृति : राष्ट्रीय संदर्भ

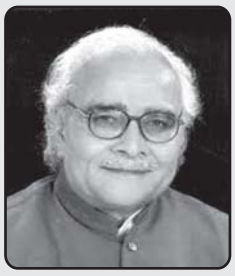

डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी

ब्रज की भागवत संस्कृति समन्वय की संस्कृति है। अपनी-अपनी रुचि या रस के अनुकूल ग्रहण करती हुई सभी के प्रति सौमनस्य भाव से आगे बढ़ी है। ब्रज ने इस सांस्कृतिक दृष्टिकोण के निर्माण और प्रसार में दो सहस्राब्दियों तक महत्वपूर्ण भाग लिया है। एक प्रकार से समन्वय -प्रधान भागवत दृष्टिकोण हमारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण बन गया है। ब्रजभूमि के कार्यकर्ता अपने इस प्राचीन मंत्र को कभी न भूलें , इस दृष्टिकोण में अनंत रस का स्रोत है। ''आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल (ब्रज साहित्य मंडल के समारोह में) अक्षय तृतीया विक्रम संवत 2010]

ब्रज संस्कृति केवल जनपद संस्कृति नहीं है अनेक सामाजिक ऐतिहासिक घटनाओं और भौगोलिक कारणों ने ब्रज मंडल को भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र बनाया है ब्रज भारत की सांस्कृतिक राजधानी रही और यहाँ से भारत की सांस्कृतिक-प्रक्रिया -[प्रसार, आत्मसातीकरण, अनुकरण, अध्यारोपण और अन्तर्भुक्ति की प्रक्रिया] निरन्तर चलती रही! देश के अन्य सांस्कृतिक केंद्रों से उसका आदान-प्रदान और संवाद निरंतर चलता रहा है।

देश के कोने कोने में लाखों लाखों लोग यहां प्रतिवर्ष अपने स्वत्व को पा जाने के लिए निरंतर आते रहते हैं और न जाने कब से आ रहे हैं। ब्रज की यात्रा उत्सव अनुष्ठानों और स्थलों का संबंध उन प्राचीन कथाओं और स्मृतियों से है जो भारत के समस्त मानस में बहुत गहराई में बसी हुई है। निश्चित ही ब्रज संस्कृति बहुजातीय संस्कृति है। उसका एक सूत्र दक्षिण के आल्वारों से जुड़ा है तो दूसरा सूत्र असम और बंगाल से।

सहजिया वैष्णव

भक्ति-आन्दोलन को देखें तो जतीपुरा में माधवेन्द्र पुरी महाप्रभु वल्लभाचार्य से पहले ही ब्रज में आ गये थे! उनके साथ सहजिया वैष्णवधारा ब्रज में आयी थी , इसका विस्तृत विवेचन डॉ. चन्द्रभान रावत ने किया है! सहजिया वैष्णव-धारा चंडीदास, महाकवि जयदेव और विद्यापति की धारा है। सहजिया वैष्णव धारा का सूत्र सहजिया बौद्धों से जुड़ा है। सहजयान! महायान! भागवत धारा के तीव्र प्रवाह में सहजयानी बौद्ध सहजिया वैष्णव बने, यह तो जाना-माना तथ्य है। चंडीदास क्रांतिचेता कवि है। यह उन्हीं की घोषणा थी- सबार ऊपरे मानुष सत्य ताहार ऊपरे नाहीं। रति विलास पद्धति सहजिया वैष्णवों का प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें प्रत्येक पुरुष कृष्ण और प्रत्येक नारी में राधा के अवतार की बात कही गयी है।

> **"मोक्ष या मुक्ति को जीवन का परम प्रयोजन माना था, लेकिन तीसरी सांस्कृतिक क्रांति ने मुक्ति को वृंदावन की दासी कहा मुक्ति लौन की खारी लागे ब्रज में मुक्ति की कोई रीझ-बूझ नहीं है। मुक्ति कहै गोपाल ते मेरी मुक्ति बताय। ब्रज रज उड़ि मस्तक पर मुक्ति मुक्त है जाय। ब्रह्मानंद ब्रजरस में अंतर्भूत हो गया तथा मुक्ति भक्ति में समा गयी। परमप्रेम रूपा दास्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य, महाभाव, प्रेमभाव की समस्त भंगिमाएँ ब्रजतत्व में व्याप्त हो गयीं।"**

गोवर्धन के राधा कुंड के और कृष्ण कुंड के आसपास असम के सहजिया साधु रहते हैं। उनका कथन है-वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन दुइ नेत्रे विराजमान राधाकुंड श्याम कुंड। सहजिया वैष्णवों का सहज शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर जैसे संत ने भी सहज के सवाल को उठाया है। सहज सहज सब कोउ कहे, सहज न चीन्हें कोउ। वृंदावन के रससाहित्य में भी सहज शब्द है परंतु बात केवल शब्द की नहीं है। सहज शब्द के साथ जो परंपरा और

परिवेश जुड़ा हुआ है, बात उसकी है। बात ब्रजतत्व की व्यापकता की है।

ब्रजबुलि

भाषाविज्ञानी डा सुनीति कुमार चटर्जी कहते हैं कि भाषा तत्त्व की दृष्टि से ब्रजबुलि मैथिली और बंगला की अंतर्भुक्ति है, उसका ब्रजभाषा से संबंध नहीं है [बंगीयसाहित्य परिषत्पत्रिका भाग 31 ,संख्या2] भाषा तत्त्व की दृष्टि से यह बात भले ही ठीक है, किंतु उन वैष्णव भक्तों को भाषा की व्याकरण का क्या करना था? वे लीला-गायन में विभोर थे, लीला तत्व ब्रज-तत्त्व है और ब्रजतत्त्व उनमें ओतप्रोत है। असम के शंकरदेव ने (जन्म सन् 1448) ब्रजबुलि में 'केलि गोपाल' नामक अंकियानाट की रचना की थी। महापुरुष शंकरदेव ने असम की राष्ट्रीय एकता को संपूर्ण भारत से संबद्ध करने का काम किया था ! वृन्दावन में यह अनुश्रुति है कि उनके शिष्य माधवदेव वृन्दावन आये थे। असम, उड़ीसा, बंगाल और मिथिला में किसी जमाने में ब्रजबुलि की धूम थी। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी भक्तों के साथ वे पद वृन्दावन में भी आये थे। विद्यापति के गीत बंगाल में गये तो बँगला के रंग में रँग गये। नेपाल पँहुचे तो उनका रंग उनसे भी अलग था। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना ने विद्यापति-पदावली के तीनों पाठों का संपादन-प्रकाशन किया था। नवद्वीप यहाँ से बहुत दूर है परंतु यहाँ कृष्ण चैतन्य के मन में ब्रजराग का प्राकट्य चुका था। वे उड़ीसा पहुँचे और वहाँ उन्हें राय रामानन्द मिल गये। साध्यतत्व पर चर्चा हुई शांतरस, उससे आगे दास्यभाव उसके आगे सख्य भाव, चैतन्य जिज्ञासा करते हैं-और आगे? राय रामानन्द उत्तर देते हैं-फिर कान्ताभाव। चैतन्य पूछते जाते हैं और आगे? अंत में राय रामानंद ब्रजबुलि में एक पद गाते हैं- पहिलहिं राग नयन भंग भेलि चैतन्य आनंद में विभोर होकर उनके मुख पर उंगली लगा देते हैं।

नाभादास ने ब्रजभाषा में भक्तमाल की रचना की है। बंगला में भी भक्तमाल की रचना हुई थी और गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उसे पढ़कर कविता लिखी- सूरदासेर प्रार्थना। उनके काव्य में ब्रज उपस्थित है-यदि परजन्मे पाइरे होते ब्रजेर राखाल बालक -यदि गोकुल के गाँव में कदंब छाया में ब्रज का ग्वाला बन सकूँ तो नवबंग में नवयुग का प्रवर्तक बन कर क्या करूँगा? रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भानुदास नाम से ब्रजबुलि में रचना की ।

उत्पन्ना द्राविडे चाहं

तोलकाप्पियम ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का तमिल ग्रंथ है ,उसमें मुल्लै वन- प्रान्त में गाय चराने वाले आयर लोगों का उल्लेख है,

जो मायोन और कण्णन के गीत गाते थे-मायोन का अर्थ है नीलमेघ के समान कान्ति वाले शिलप्पधिकारम् ग्रंथ में नप्पिनै का संदर्भ है। मणि मेखलै में कुरवैकुल नृत्य का संदर्भ है, जिसमें रास नृत्य छवि को खोजा गया है। भागवत के अध्येताओं का कथन है कि भागवत ग्रंथ की रचना दक्षिण भारत में हुई। भागवत-संस्कृति का संदेश है कि भिन्नता तात्त्विक नहीं, भिन्नता नाम-रूपात्मक है। वैसे भी तमिल आलवारों को छोड़कर वैष्णवता के मूल स्रोतों को कैसे खोजा जा सकेगा? भागवत- महात्म्य में नारद और भक्ति का संवाद है। वहाँ भक्ति कहती है -

उत्पन्ना द्राविडे चाहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे, जीर्णतां गता।
वृंदावनम् पुनः प्राप्य नवीनेन स्वरूपिणी।

कृष्णलीला के अध्येताओं ने निर्देश किया है कि कृष्णलीला का विकास लोककथा और लोकगीतों के माध्यम से हुआ। गोपों और यादवों के संपर्क में आने वाली आभीर और गुर्जर जातियों में ये लोकगीत बहुत लोकप्रिय थे। ब्रह्मसूत्र का वाक्य बहुत महत्त्वपूर्ण है - लोकवत्तु लीला कैवल्यम्!

चैतन्य की दक्षिणयात्रा पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जायेगा कि विश्वरूप की खोज तो एक बहाना है। वे तो दक्षिण भारत में ब्रज और वृंदावन को खोजने गये थे। उस रस की खोज में गये थे, जो ब्रजसंस्कृति का प्राण-तत्त्व है। भूगोल के ब्रज की बात होती तो वे दक्षिण में क्यों जाते और वहाँ उन्हें 'कृष्ण -कर्णामृत' कैसे मिल जाता? चैतन्य ने अपनी दक्षिण-यात्रा में लीलाशुक को पा लिया - 'पथिको, मेरी बात सुनो, भीमरथी के पुलिन की ओर मत जाना।

तमाल नील पुरुष खड़ा है। वह धूर्त चित्त रूपी वित्त को लूट लेता है।'

भारतवर्ष की तीन सांस्कृतिक क्रान्तियाँ : अन्तर्भुक्ति की विराट प्रक्रिया

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार भारत के सांस्कृतिक इतिहास में तीन क्रांतियाँ हुई। पहली क्रांति- वैदिक संस्कृति और निषाद संस्कृति का द्वन्द्व, समायोजन और अन्तर्भुक्ति है, जिसकी अभिव्यक्ति वेद व्यास के साहित्य में है। वैदिक तत्वज्ञान को लोक में व्याप्त निषाद-संस्कृति के धार्मिक आचार-विचारों के साथ मिलाकर 'महाभारत' के रूप में समन्वय करना पहल क्रान्ति। वेदव्यास की माँ निषाद-कन्या थी। कुबेरनाथ राय ने और भवदेव पांडेय ने निषाद-संस्कृति पर गहराई से अध्ययन किया है।

भारत की दूसरी सांस्कृतिक क्रांति विक्रम की पहली शताब्दी के आसपास हुई। जब महायान और भागवत धारा की अन्तर्भुक्ति हुई और युगसत्य के रूप में विष्णु की प्रतिष्ठा हुई। भागवत धर्म और महायान के चिन्तन का समन्वय। शुंग, कुषाण काल के धार्मिक आन्दोलन इसी सेतुबन्ध की ओर लक्ष्य करते दिखाई देते हैं। जैन, बौद्ध और शैवों ने भी नामभेद रखते हुए, उसमें भाग लिया, मूल प्रेरणा एक थी। दक्षिण भारत के स्रोत से जो भागवत आन्दोलन बढ़ रहा था, वह महायान से जुड़ा। विष्णु विराट तत्त्व भारत के समष्टिजीवन के केन्द्रीय तत्त्व के रूप में उभरा। विष्णु अर्थात् व्यापक, विराट तत्त्व। जो सब को अपने में व्याप्त कर ले और जो सब में व्याप्त हो जाय। अचिन्त्य ब्रह्मतत्व विष्णु बनकर प्रकट हुए। विष्णु तत्त्व में सभी व्याप्त हैं और सबमें वह विराट तत्त्व व्याप्त है। वह तत्त्व जो सब में व्याप्त हो जाय और सबको अपने में व्याप्त कर ले। अवतार की अवधारणा संस्कृतियों के सामंजस्य की अवधारणा है। जब वैष्णव आन्दोलन व्यापक हुआ, तब समस्त भिन्नताएँ विष्णु में विलीन हो गई। राम, कृष्ण, वाराह, नृसिंह, कूर्म, मत्स्य, वामन, परशुराम, कल्कि ही नहीं बुद्ध भी विष्णु या हरि की अवधारणा में समा गये। अवतारवाद को लोक ने स्वीकार किया और विष्णु के अवतारों में बुद्ध की भी गणना हुई,

ऋषभदेव की भी गणना हुई और राम तथा कृष्ण भी विष्णु के अवतार के रूप में लोक नमस्कृत हुए। समस्त भारत विष्णु के सूत्र में समा गया। सब प्राणियों को सब विचारधाराओं को अपने में व्याप्त करना और सब में व्याप्त हो जाना यही विष्णु की विशेषता थी। विष्णु सब में व्याप्त है और सब विष्णु में व्याप्त हैं। यह बिना किसी भेदभाव के सभी को एक ही छत्री के नीचे लाने का विराट आयोजन था - **किरात -हूणान्ध्र पुलिन्द पुल्कसा आभीर कंका यवना खसादयः। येऽन्ये पि पापास्तत्पाद आश्रयाद शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः। भागवत 2/4/18**

हरि शब्द

ब्रज और वृन्दावन में श्रीकृष्ण की उपासना के जो आन्दोलन उठे, वे सम्पूर्ण भारतवर्ष को सांस्कृतिक प्रक्रिया का अंग थे, उसकी प्रतिक्रिया थे या उसका प्रभाव और उसका परिणाम थे। अन्तर्भुक्ति की इस विराट प्रक्रिया क्यों कृष्ण हरि कहलाये ? अथवा हरि कृष्ण कैसे हो गए ? जो बाँकेबिहारी हैं, वे हरि ही तो हैं, जो राधावल्लभ हैं वे हरि ही तो हैं, द्वारकाधीश हैं वे भी हरि हैं, जो वेंकटेश्वर, श्रीरंगम और जगन्नाथ हैं, वे भी हरि ही हैं। यह हरि शब्द संपूर्ण भारत की विश्वास-प्रणाली, विचार प्रणाली, सौन्दर्यबोध और विश्वबोध में समाया हुआ है। निर्गुण सन्तों में भी हरि शब्द व्यापक है ! यहाँ हरि शब्द पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए, जो सूर तुलसी जैसे कवि मनीषियों की वाणी में भी है और नानक तथा गुरुनानक की वाणी में भी है हरिमिन्दर साहब में भी हरि है।

वासुदेव शरण अग्रवाल कह रहे हैं कि ''ब्रज की भागवत संस्कृति समन्वय की संस्कृति है। अपनी-अपनी रुचि या रस के अनुकूल ग्रहण करती हुई सभी के प्रति सौमनस्य भाव से आगे बढ़ी है। ब्रज ने इस सांस्कृतिक दृष्टिकोण के निर्माण और प्रसार में दो सहस्राब्दियों तक महत्वपूर्ण भाग लिया है। एक प्रकार से समन्वय-प्रधान भागवत दृष्टिकोण हमारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण बन गया है। ब्रजभूमि के कार्यकर्ता अपने इस प्राचीन मंत्र को कभी न भूलें, इस दृष्टिकोण में अनंत रस का स्रोत है।''

मोक्ष पुरुषार्थ : परिभाषा बदल गयी

भागवत का चिन्तन समझने की जरूरत है। शास्त्र चिंतन ने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्रतिष्ठा की थी। मुक्ति की परिभाषा बदल गयी। भागवत में प्रह्लाद की कथा है। जब भगवान ने वर मांगने को कहा, तब प्रह्लाद बोले- **प्रायेण देव-मुनयः स्वविमुक्तिकामा, मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठा। नैतान्विहाय कृपणान्स्वविमुक्ष एको, नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतो नुपश्ये। 7-9-44]** प्रायः ही हम देखते हैं कि अपनी ही मुक्ति की कामना से बडे-बडे देव और मुनि जंगल में जाकर मौन आदि व्रतों को धारण करके तप तो करते हैं किन्तु दूसरों की भलाई का कोई प्रयास नहीं कर पाते, मेरी मनस्थिति इनसे भिन्न है- इन बेचारे गरीब -असहाय लोगों को छोड कर ऐसी किसी मुक्ति में मेरा तो विश्वास ही नहीं है। इन भटकते हुए लोगों के लिये किसका आश्रय है? भागवत-आन्दोलन ने मुक्ति को नकार दिया और प्रेम-भक्ति की प्रतिष्ठा की। प्रेम-भक्ति बहुत व्यापक

सामाजिक–भाव है। सामाजिक–भाव कहना भी शायद छोटा होगा क्योंकि प्रेम–भक्ति की करुणा का विस्तार जीव–मात्र की परिधि और परिवेश को समेटे हुए है।

मोक्ष या मुक्ति को जीवन का परम प्रयोजन माना था, लेकिन तीसरी सांस्कृतिक क्रांति ने मुक्ति को वृंदावन की दासी कहा मुक्ति लौन की खारी लागे ब्रज में मुक्ति की कोई रीझ–बूझ नहीं है। मुक्ति कहै गोपाल ते मेरी मुक्ति बताय। ब्रज रज उड़ि मस्तक पर मुक्ति मुक्त है जाय। ब्रह्मानंद ब्रजरस में अंतर्भूत हो गया तथा मुक्ति भक्ति में समा गयी। परमप्रेम रूपा दास्य, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य, महाभाव, प्रेमभाव की समस्त भंगिमाएँ ब्रजतत्व में व्याप्त हो गयी।

दो सहस्राब्दी शब्द का जो प्रयोग है, वह उस भागवत–आन्दोलन का संकेत है, जो पूरे भारत में उद्वेलित हो रहा है, किसी न किसी रूप में जो सबको व्याप्त कर रहा है और जिसका प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष सूत्र ब्रजमंडल से जुड़ा हुआ है! यही कारण था कि सोलहवीं शती में सगुणभक्ति की जो वेगवती भावधारा देश के प्रत्येक भाग में प्रवाहित हुई, उसका केन्द्र ब्रजमंडल था! यह भारत की तीसरी बड़ी सांस्कृतिक–क्रांति थी। भक्ति आंदोलन के रूप में तीसरी सांस्कृतिक क्रांति ने तत्वचिंतन का प्रस्थान ही बदल दिया। आचार्य वल्लभ ने भागवत को चौथा प्रमाण माना था किंतु चैतन्य महाप्रभु ने भागवत को ही तत्वचिन्तन का प्रमाण घोषित किया।

प्रमाणं तत्र गोपिका: भक्ति मार्ग की आचार्या गोपी है। गोपी को वेद की ऋचा के रूप में मान्यता मिली। लोक और शास्त्र के इस संवाद ने लीला की अवधारणा की पुष्टि की। इस बात में रंचमात्र भी संदेह नहीं होना चाहिए कि लीला इतिहास की घटना नहीं होती इतिहास की घटना देश काल से आबद्ध होती है और लीलातत्व देशकाल से अतीत है। लीला लोकतत्व से प्रेरित है और भारतीय साहित्य में ब्रज की पहचान लीला से ही है। इस क्रांति ने शास्त्रचिन्तन की स्थापनाओं को चुनौती दी, वह ब्रह्मतत्व जो शास्त्र चिंतन के केंद्र में था, उसकी क्या दशा बनी, यह आप सब जानते हैं। **कं प्रति कथयतुमीशे संप्रति को वा प्रतीतिमायति गोपतितनयाकुंजे गोपवधूटी विटं ब्रह्म।** रसखान ने इस बात को यों कहा– **ब्रह्म मैं ढूँड्यौ पुरानन––गानन वेद रिचा चौगुने गायन। देख्यौ दुर्यौ वह कुंज कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका पायन।**

भागवत का मूल– स्वर मनुष्यता का स्वर है।

यह बात ठीक है कि भागवत एक ग्रन्थ है, एक शास्त्र है किन्तु इससे भी बडी बात यह है कि वह समस्त भारत की एक सांस्कृतिक–धारा है, living tradition है। living tradition अर्थात् जो प्रवृत्ति परंपरा के रूप में जीवन में आज भी विद्यमान है। भागवत : वेद से लोक की ओर चलने वाली गति है। एक प्रसंग में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीनाथजी की ओर संकेत करके कहा था कि भागवत और श्रीनाथजी एक ही हैं। ब्रजसंस्कृति और भागवत का संबंध ओतप्रोत संबंध है। ब्रजसंस्कृति के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को समझने की दिशा में वृन्दावन शोध–संस्थान चाहे तो living tradition पर एक बड़ी शोध–परियोजना का संकल्प कर सकता है। भागवत भारत के लोकजीवन का, लोकसंस्कृति का एक वेगवान और निरन्तर प्रवाह है। ऐसा प्रवाह, जिसने पूरे देश के जनमानस को आप्लावित किया है। भागवत में जिन कथाओं का संकलन है, वे भारत के लोकजीवन की वाचिक–परंपरा में उस समय भी थीं और आज भी उनका प्रवाह अविच्छिन्न है। लोक और शास्त्र का निरन्तर संवाद चलता रहा है और चलता भी रहेगा। भागवत लोक और शास्त्र के सामंजस्य का प्रयत्न है। यही कारण है कि किसी जमाने में वेद को प्रमाण मान कर शास्त्रार्थ हुआ करते थे, फिर गीता तथा वेदव्यास का ब्रह्मसूत्र भी प्रस्थान माने जाने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत की समाधिभाषा को भी प्रस्थान घोषित किया किन्तु महाप्रभु चैतन्य ने तो कहा कि भागवत ही एकमात्र प्रमाण है। ध्यान से विचार करें तो यह वेद से लोक की ओर चलने वाली गति है! वेद का देवता तो भागवत में पराजित है। इन्द्र हों, वरुण हों, कुबेर हों, ब्रह्मा हों। भागवत का मूल–स्वर मनुष्यता का स्वर है।

भारत बहुत विशाल देश है। यहाँ भौगोलिक विविधता और जातियों, समुदाय, वर्गों, वर्णों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों को विविधता के साथ–साथ भाषाओं और जीवन स्तरों की विविधता भी है। इन असंख्य विविधताओं के बावजूद एकता की प्रक्रिया उतनी ही सशक्त व्यापक और विराट है। ये तीनों सांस्कृतिक क्रान्तियाँ अन्ततः राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया हैं। अनेक स्रोत हैं. अनेक धाराएं हैं, वे सब गंगा में मिलती हैं, अन्त में समुद्र मैं मिलती है। समुद्र से फिर मेघ उठते हैं और विभिन्न दिशाओं में छितरा जाते हैं। विविधता और एकता को प्रक्रिया साथ–साथ चलती रहती है। आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ब्रजतत्त्व को भारत के तत्त्वचिंतन परंपरा की निरंतरता में प्रतिष्ठित करते हैं। जैसे संस्कृत की तत्त्व चिन्तन–परंपरा है, वैसी ही तत्त्वचिंतन परंपरा ब्रजभाषा में है। लीला की अवधारणा तत्त्व–चिन्तन से भिन्न नहीं है।

गुजरात और महाराष्ट्र

जब गुजरात के मन में का रस छलकता है, तब गरबा के साथ लोकगीतों के स्वर धरती और आकाश को एक कर देते हैं–सखी

सहेली ना संग माँ रे अमें चाल्या छे यमुना तीर रे, आज कोई रोको नहीं। गुजरात में ब्रजभाव की उपस्थिति को लेकर जगदीश गुप्त, जवाहर लाल चतुर्वेदी के शोध निबंध प्रकाशित हो चुके है। नरसी मेहता का ब्रजभाव जगन्नाथ की ओडिया भागवत, पोतन्ना की आंध्र भागवत, कनार्टक के कूट कवियों के कन्नड़ गीत, , मलयालम की मुकुंद माला, मणिपुर की बिंबावती के विरह गीत को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में सूरसौरभ [एन सुंदरम] और ब्रजभारती में बहुत सी सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। वृंदावन शोध संस्थान ने 1988 में 'भारतभाव रूप कृष्ण' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की थी और अब वह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। महाराष्ट्र के एकनाथ, नामदेव के काव्य में ब्रज तत्त्व को लेकर डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल का निबंध ब्रज विभव में प्रकाशित है।

भारत का सारा मध्यकालीन साहित्य अविभक्त है

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मध्यकालीन धर्मसाधना' में लिखा है कि भारतवर्ष का दीर्घकालीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रान्तों के राजनीतिक संबंध बनते और बिगड़ते रहे हैं किंतु मध्यकाल में भक्ति साहित्य ने देश के विभिन्न भागों में अद्भुत एकता स्थापित की थी। वे कहते हैं कि 'देश के विभिन्न प्रान्त इतने अधिक अन्त: संबद्ध हैं कि एक प्रदेश के साहित्य, धर्म और तत्त्ववाद को दूसरे प्रदेश के साहित्य, धर्म और तत्त्ववाद के बिना नहीं समझा जा सकता। आचार्य द्विवेदी ने रेखांकित किया है कि यदि ब्रजभाषा साहित्य तक की सीमा बांध कर बैठे रहे तो इस महान रस समुद्र का एक ही पहलू देख सकेंगे। उन्होंने लिखा है कि सूरदास को समझने के लिए विद्यापति, चंडीदास और नरसीमेहता परम आवश्यक हैं।' आचार्य द्विवेदी ने निष्कर्ष दिया है कि 'इस साहित्य के माध्यम से हम अध्ययन करें तो लगेगा कि समूचा भारत नाना भाँति की साधनाओं, विश्वासों और अंत:संबद्ध विचारों के सूत्र से कस कर सीं दिया गया है। इस सूत्र का एक सिरा बंगाल में है तो दूसरा पंजाब में तीसरा मारवाड़ में और आश्चर्य नहीं कि चौथा मालावार में निकल आए।' भारतवर्ष का मध्यकालीन साहित्य वस्तुत: प्रान्तवार बँटा हुआ विभिन्न बोलियों का साहित्य नहीं है, वह सारा साहित्य अविभक्त है और एक ही है। स्पष्ट है कि ब्रजतत्व को जनपद और प्रदेश की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। ब्रजसंस्कृति के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को समझने की दिशा यही है। इस प्रसंग में हमारा ध्यान वृंदावन के रसोपासकों की ओर आकर्षित होता है। वृंदावन के रसोपासकों ने अपने को भक्त या वैष्णव नहीं कहा लेकिन सिद्ध और अवधूत कह दिया। मैंने धर्मवीर भारती का सिद्ध साहित्य उठाया तो देखा कि सिद्धों के चर्यागीत का भाव श्यामाश्याम की रह:केलि के आस-पास ही है।

ब्रजसंस्कृति में राष्ट्रीयता रमी हुई है, उदाहरण - दादी भुआ बाल्टी भर कर नहाती थीं, तब वे मन्त्र सा बोलती थीं, आ गंगे आ जमुने ,हरद्वारे कुशावर्ते इल्लके बिल्लके पर्वते ! गंगा गये न गौमती चढ़े न गिरि गिरनार। अर्जुन रथ कों हाँकियो। मैया एक श्लोक पढ़ती थी। गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती, नर्मदे सिन्ध कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु। देश की सुदूरवर्ती नदियों को वे मानसिक रूप से अपनी बाल्टी के जल में बुला लेती थीं। भौगोलिक-दूरियाँ एक भावसूत्र से सिमट कर एक बाल्टी में समा गयीं। यह भावसूत्र क्या है ? यह राष्ट्रीयता का भावसूत्र है। राष्ट्र का तात्पर्य है। भारत की शत-सहस्र मानव-जातियों की एकता। समान सामूहिक-स्मृतियां, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व। एक साथ जिंदा रहना और इतिहास के सुख-दुख और उतार-चढाव में समान-अनुभूतियों से गुजरना। ये मन्त्र राष्ट्रीय-भाव के मन्त्र हैं। इस धरती के जन-जन का इस धरती के नदी-पहाड़ और कण-कण से जो तादात्म्य- संबंध बना है, वह किसी राजसत्ता या उसके कानून ने नहीं बनाया, यह संबंध लोकजीवन की अनादि-परंपरा की रचना है। संस्कृति की रचना है।

ब्रज मंडल केवल वैष्णवों का ही केन्द्र नहीं रहा, यहाँ नाग भी थे, यक्ष भी थे, दैत्य और दानव भी थे। यहां के वनों में एक ओर गोप रहते थे तो दूसरी ओर असुर भी थे। राजा बलि का तत्त्व राष्ट्रव्यापी है। यहाँ बौद्ध-संस्कृति का भी केन्द्र रहा, चौरासी सिद्ध और जम्बूस्वामी की साधना का स्थल भी है। यहाँ गोरखनाथ की परंपरा भी है- देवी मैया के भवन घुटरुन खेलै लाँगुरिया ! लाँगुरिया भैरव ही तो है।

भक्ति काल में जिस तत्व बोध का विकास ब्रज में हुआ वह समूचे भारतवर्ष का अंतर्मंथन है। भिन्न-भिन्न प्रांतों की नाना भांति की साधनाओं, विश्वासों और विचारों के सूत्र परस्पर एक दूसरे में समा गए हैं। जब शिव-उपासना की परंपरा ब्रज में आयी तो भगवान शिव जसोदामैया को बधाई देने चले आये। रास को देखने आये और गोपीश्वर महादेव बन कर वृन्दावन में विराज गये। जब शक्ति-परंपरा ब्रज में आई तो उसका भी वैष्णवीकरण हुआ और राजराजेश्वरी कामेश्वरी वृंदावन में ललिता सखी बन गयी। वृन्दावन का ललितसंप्रदाय बन गया। ब्रजमंडल तो बहुत बड़ा है, वृन्दावन के मन्दिरों, आश्रमों का ही सर्वेक्षण कर लें, आपको लघु भारत के दर्शन हो जायेंगे।

- संपर्क- 1828 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेक्टर- 13-12
पानीपत- 132203(हरियाणा), मो.- 9996007186

■

थाट-राग पद्धतिः

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण
अग्रवाल 'रजक'

थाट-राग पद्धति पर चिंतन से पूर्व ठाठ, ठाट या थाट और राग को अलग-अलग समझ लेना उचित रहेगा। दरअसल 'ठाठ' शब्द का प्रयोग आम जन-मानस में 'शान-शौकत' अथवा 'ढांचे' के अर्थ में किया जाता है। संगीत में इसे 'ढांचे' के अर्थ में ही लिया जाता रहा है। यों मैं तो इसे 'शान' के अर्थ में भी व्याख्यायित करता रहा हूं क्योंकि जब किसी भी एक थाट से 484 तक राग तो केवल जातियों के आधार पर ही बना लिए जाते हैं तो जिस प्रमुख राग को उसके थाट का नाम ही दे दिया जाता है, उसकी महत्ता सर्वाधिक हो जाने के कारण उसके तो ठाठ ही कहलाएंगे। इसे ठाठ, ठाट या थाट नामों से जाना जाता है। ठाठ के ढांचे में ही कुछ अन्य विशेषताएं समाहित कर विभिन्न रागों का निर्माण होता है। शास्त्रीय संगीत का प्रमुख आधार भी ये राग ही होती हैं। राग के विषय में विद्वानों द्वारा बहुत-सी बातें कही गई हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि किसी भी राग में जन-जन के चित्त का अनुरंजन करने की सामर्थ्य बताई गई है। दामोदर प्रणीत 'संगीत-दर्पण' के रागाऽध्यायः नामक द्वितीय अध्याय के प्रथम श्लोक में ही कहा गया है कि -

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधै।।

अर्थात् वह नियमित ध्वनिविशेष (निश्चित स्वरों का समुदाय) जो स्वर तथा वर्ण से मंडित है और जो सर्वसाधारण का मनोरंजन करती है, उसे पंडितों ने राग कहा है।

संगीत एक ऐसी कला है जो विज्ञान और गणित के भी बहुत करीब है। संगीत-शास्त्र का गहन अध्ययन इस बात की पुष्टि भी कर देता है। केवल लय और ताल के मामले में ही नहीं, रागों की निर्मिति में भी गणित का बहुत सहारा लिया जाता है। शास्त्र की परीक्षाओं में भी अक्सर 72 थाटों और 32 थाटों की रचना-विधि को पूछ लिया जाता है। यह भी पूछ लिया जाता है कि जातियों के आधार पर एक

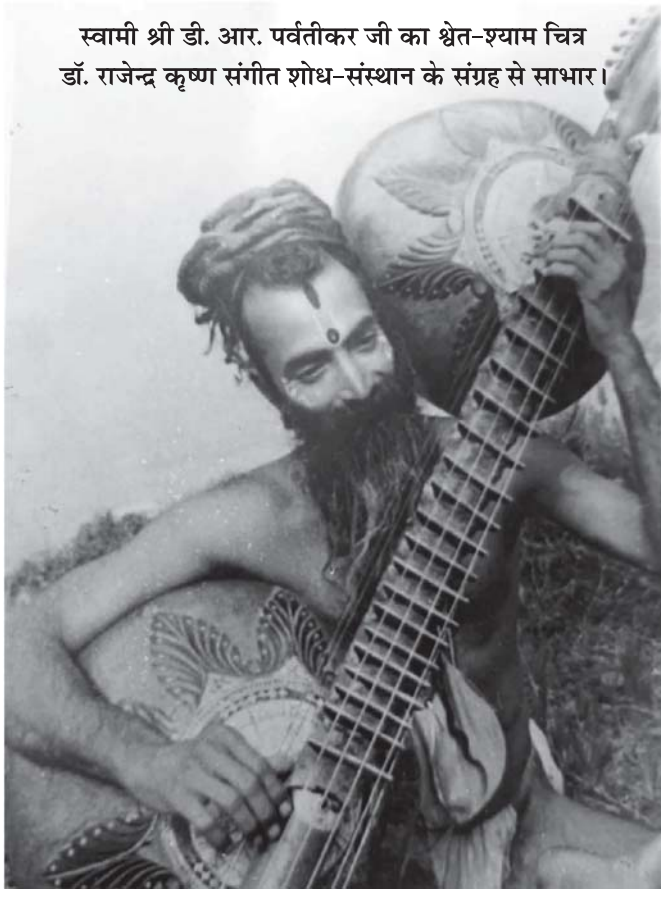

स्वामी श्री डी. आर. पर्वतीकर जी का श्वेत-श्याम चित्र
डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत शोध-संस्थान के संग्रह से साभार।

थाट से 484 रागों की निर्मिति को समझाएं।

इस तरह के प्रश्न गणित में कमज़ोर छात्र-छात्राओं को बहुत परेशान करते हैं। यहाँ हम केवल थाट और राग पर ही चर्चा कर रहे हैं, अतः उसी पर ध्यान केंद्रित करेंगे-

पहले हम यह जान लेते हैं कि राग-निर्मिति के प्रमुख आधार क्या हैं ?

राग-निर्मिति के पांच प्रमुख आधार होते हैं, जो इस प्रकार हैं -

01- स्वर/स्वरों के रूप/रूपों में भिन्नता करके।

02- राग-जाति में भिन्नता करके।

03- राग के वादी-संवादी स्वरों में भिन्नता करके।

04- मूर्च्छना-पद्धति से।

05- किन्हीं दो या दो से अधिक रागों के मिश्रण से।

इन सभी तरीकों में सर्वाधिक सरल और सुगम तरीका स्वर और जाति परवर्तित कर राग बनाने का है। इन दोनों तरीकों में भी जाति बदलकर राग बनाने का तरीका तो पूरा-का-पूरा ही गणिताधारित है।

हम उसी की चर्चा करके बतलाना चाहते हैं कि मात्र इसी ढंग से विगत शती के प्रमुख संत संगीतज्ञ स्वामी रामदत्त पर्वतीकर जी ने तो 92416 रागों के निर्माण की विधि तक समझा दी थी। यही नहीं, रागों के रचना - क्रम के साथ-साथ उनके नामों को भी याद करने की बड़ी ही सुगम विधि ईजाद करके संगीत की दुनिया के सामने रख दी थी, किंतु उस विधि का उचित प्रचार-प्रसार न होने के कारण जन-सामान्य तक वह नहीं पहुंच सकी। स्वामी पर्वतीकर जी उस ज़माने के बहुत ही पढ़े-लिखे और सिद्ध संत संगीतज्ञ थे, जो विरक्त होकर अपना अधिकांश समय बद्रिकाश्रम में बिताते थे। मथुरा, वृंदावन और दिल्ली में भी उनके निश्चित ठिकाने थे। मुझे उनके दर्शन इन्हीं जगहों पर हो पाते थे।

डॉ. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक' एवं शिष्य लाला रविशंकर जी

बाबा महाराज वाणी से बहुत ही कम बोलते थे और प्राय: नारायण-नारायण बोलकर ही संकेतों या इशारों से अपनी बात कह देते थे। मथुरा में यमुना किनारे बंगाली घाट स्थित गौर गिरिधर मोरारी धर्मशाला और वृंदावन में यमुना किनारे स्थित खाक चौक में बाबा ठहरते थे। त्रिकाल संध्या से पूर्व यमुना-स्नान करते थे। अपरस में रहने के कारण अपने ही हाथ की बनी खिचड़ी खाते थे। खिचड़ी-प्रसाद पाने से पूर्व हमसे भी पूछते अवश्य थे किंतु हम मना कर देते थे। एक बार तो सुबह-सुबह ही ''बाबा हम खाना खाकर आए हैं'' झूठ बोल देना मुझे और मेरे एक मित्र को इतना महंगा पड़ गया कि बाबा जी रियाज़ के लिए वीणा लेकर बैठे तो मुझे भी तबला संगति के लिए बिठा लिया। उस दिन भूखे पेट जो दशा हुई, मैं ही जानता हूं। अस्तु।

बाबा महाराज ने 32 थाटों को पांच-पांच अक्षरों के नाम दिए। उन्होंने जातियों के आधार पर औडव, षाडव और सम्पूर्ण जातियों से कुल 304 आरोहियां और 304 अवरोहियां बनाईं। इस प्रकार 304 × 304 = 92416 रागों का रचना - क्रम रखा। उस ज़माने में उन्होंने छोटी-छोटी पुस्तकों के माध्यम से अपनी इस खोज को सुधी पाठकों के सामने भी रखा, किंतु उनके इस अति महत्त्वपूर्ण कार्य पर भी किसी का ध्यान नहीं गया। ये पुस्तकें उन्होंने श्री भगवतशरण शर्मा जी और मुझ जैसे कुछ पढ़ोकों को भी भेंट की थीं। मेरे पास आज भी उनकी दी हुई सभी पुस्तकें सुरक्षित हैं, जो आठ-आठ या सोलह-सोलह पृष्ठों की हैं। वे नादानंद पद्धति के अनुसार संगीत-शिक्षा देते थे। अस्सी के दशक में तो बाबा ने गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित अपनी काव्यमय श्रीमद्भागवत की प्रति भी मुझे भेंट की। इससे सिद्ध होता है कि वह उच्चकोटि के भक्त-कवि भी थे।

थाट और राग के संबंध में अन्य भी विद्वानों ने चिंतन-मनन किया है और आज भी कर रहे होंगे। बहुत-से कलाकारों ने तो नवीन रागों का भी अविष्कार किया है और आज भी नवीन रागों की चर्चा होते हम सुन ही लेते हैं। कुछ कलाकार और विद्वान् उनके इस कार्य को महत्त्व देते हैं और कुछ नहीं भी देते। उस्ताद विलायत खां साहब तो कहते थे कि जब मुझे चार लाख छियासी हज़ार राग-रागनियां आवेंगी तब मैं कुछ ईजाद (नए राग का) के बारे में सोचूंगा। दरअसल रागों की संख्या के संबंध में सभी विद्वान् एकमत इसलिए नहीं हो सके हैं कि प्राचीन संगीत में तो 'षड़ज' एवं 'पंचम' स्वरों के लोप करके भी औड़व जाति के राग बना लिए जाते थे क्योंकि ये दोनों स्वर अचल नहीं माने जाते थे। ऋषभ एवं धैवत स्वर कभी भी अपना स्थान नहीं छोड़ते थे। हमारी आज की थाट पद्धति में तो इन बातों पर कोई चिंतन ही नहीं हुआ है।

मेरे मन में भी एक प्रश्न बचपन से ही बार-बार कौंधता रहा है कि जब हज़ारों-लाखों राग पहले से बन ही चुके हैं, फिर नव-सृजित किसी भी राग की क्या गारंटी कि वह नवीन है अथवा नहीं? यह कहीं ऐसा ही तो नहीं कि जैसे शून्य से लेकर नौ तक के अंकों को ही यदि कोई बिना किसी नियम के एक के बाद एक रखते चले जाए और फिर यह कहे कि आज से पहले किसी ने भी संख्याओं को ऐसे क्रम में नहीं लिखा होगा? तो यह भी सत्य है कि उसके इस दावे को कोई भी, कभी भी और कहीं भी ख़ारिज नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि जितने भी नव-सृजित राग हैं, यदि कोई खोजने बैठे तो उन हज़ारों-लाखों रागों में से ही खोजे जा सकते हैं। पर इतनी कवायद करेगा कौन? मैं तो यह भी मानता हूं कि कोई भी फिल्मी-

गीत अथवा लोक-गीत तक किसी-न-किसी एक राग या एकाधिक रागों पर आधारित निकल ही आवेगा। और यही एक साफ़ वज़ह भी है कि उसमें अदृश्य रूप से राग है, तभी वह जन-जन का गलहार बन भी जाता है। अस्तु।

एक बात और सोचने की यह है कि एक आम आदमी कुछेक रागों के नामों से पहले भी भ्रमित होता रहा है और आज भी स्थिति जस-की-तस बनी हुई है। जैसे कि

राग भूपाली और कल्याण के मिश्रण से बनी शुद्ध कल्याण या भूप कल्याण को भूप कल्याण कहना तो तर्कसंगत सिद्ध होता है किंतु शुद्ध कल्याण क्यों कहा जाता है? इस राग का अधिक प्रचलित नाम भी यही है। विभिन्न संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में भी यही लिखा देखा जा सकता है। इससे क्या यह भ्रम पैदा नहीं होता कि यदि यह शुद्ध कल्याण है तो कल्याण थाट का सर्वप्रमुख राग कल्याण, क्या अशुद्ध कल्याण है? इसी प्रकार की भ्रांति राग शुद्ध सारंग के नाम से भी होनी स्वाभाविक है।

इसी प्रकार एक ही राग को विद्वानों द्वारा दो या तीन थाटों में मानने से भी संगीत के प्रारंभिक विद्यार्थियों को बहुत अधिक असुविधा का सामना करना पड़ता है। जो रट्टू-तोता प्रवृत्ति के होते हैं, उनकी बात को यदि छोड़ दें तो जो विद्यार्थी चिंतनशील प्रवृत्ति के होते हैं, उनको बहुत अजीब लगता है और वे यह भी सोचते हैं कि रागों के नामों में ऐसी विकृतियां आख़िर आईं तो क्यों आईं? क्या इसे ठीक नहीं किया जा सकता?

लंबे समय से मैं स्वयं इस विषय पर काफ़ी चिंतन-मनन करता आ रहा हूं और जिस प्रकार के प्रश्न मेरे भी विद्यार्थीगण मुझसे विगत 52 वर्षों से करते आ रहे हैं, उससे यही सीख मिली कि यदि कुछ ऐसा कार्य कर लिया जाए कि उस पर सभी अथवा अधिसंख्य विद्वान् (क्योंकि सभी तो कभी एकमत हो ही नहीं सकते) एकमत होकर अपनी सहमति व्यक्त कर दें तो शिक्षार्थियों को शिक्षण भी फिर उसी प्रकार से प्रदान किया जा सकता है जिससे कि भ्रम की गुंजाइश ही न रहे। जबरन किसी कार्य को दुरूह बना देना कहां की अक्लमंदी है? संगीत में ऐसे एक नहीं, अनेकानेक प्रश्न हैं जिनके ऊपर एकमत होकर कुछ निर्णय होने अत्यावश्यक हैं। एक तो संगीत कला वैसे ही बहुत दुरूह और श्रमसाध्य है, ऊपर से उसमें ऐसी ऊहापोह वाली स्थितियां उसे और भी अधिक कठिन बना देती हैं।

मेरा मानना यह भी है कि संगीत में गाने-बजाने वालों और शास्त्रज्ञों में भी शायद कभी एका नहीं रहा, बल्कि इनकी नूरा-कुश्ती भी चलती ही रहती है, जिसका दुष्परिणाम हमारे नव-प्रशिक्षुओं पर पड़ता है।

मेरे एक वयोवृद्ध शिष्य लाला रविशंकर, जो गोरखपुर निवासी हैं और अवकाश प्राप्त इंजीनियर एवं बांसुरी वादक हैं, उन्होंने भी थाट और राग पर काफ़ी परिश्रम करके उत्तर भारतीय संगीत के दस थाटों में से आठ लेकर और उनमें आठ ही दक्षिण भारतीय पद्धति के थाट जोड़कर, फिर उन सोलह थाटों को तीन-तीन वर्गों में बांटकर ऐसा रूप देने का प्रयास किया है कि 'एक राष्ट्र-एक संगीत' का सपना भारत में साकार हो सके। उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय थाट और राग का चक्कर ही ख़त्म हो जाए। उनके कार्य का भी गहनता से अध्ययन कर मैंने पाया कि उसको भी उचित संशोधन के साथ प्रकाशित कर प्रचारित-प्रसारित किया जाए और फिर उस पर भी विद्वानों की सम्मतियां ली जाएं और यदि समुचित संशोधनों के साथ उसे मान्य कर दिया जाए तो भी संगीत-शिक्षण की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण क़दम सिद्ध हो सकता है।

यद्यपि इस दिशा में अभी गुनि जनों द्वारा बहुत अधिक चिंतन-मनन की आवश्यकता है, साथ ही संगीत के प्रायोगिक पक्ष के मूर्धन्य कलाकारों और उद्भट विद्वानों के मार्गदर्शन की भी महती आवश्यकता होगी ताकि इस विषय पर निर्णयात्मक क़दम उठाए जा सकें।

'संगीत चिंतन' स्तंभ के इस आलेख के माध्यम से मैं संगीत के सुधी विद्वानों और पाठकों के साथ गुणज्ञ कलाकारों से विनम्र आग्रह करता हूं कि यदि थाट-राग संबंधी कोई नवीन चिंतन उनके पास हो अथवा उन्होंने स्वयं किया हो तो 'कला समय' के माध्यम से उसको प्रस्तुत करने की कृपा करें ताकि इस अति महत्त्वपूर्ण विषय पर भी कुछ ठोस कार्य हो सके।

यदि ऐसा कुछ भी संभव हो सका तो हम सबका यह सम्मिलित प्रयास भी मील का पत्थर साबित हो सकता है और भावी पीढ़ियों को संगीत की सहज तरीके से शिक्षा प्रदान करने में सुगम भी सिद्ध हो सकता है।

यदि सुधी पाठकों की सार्थक प्रतिक्रिया मिली तो इस नवीन थाट-राग पद्धति को आपकी अपनी पत्रिका 'कला समय' में प्रकाशित भी कर सकते हैं। आपकी प्रतिक्रिया की हमें उत्सुकता से प्रतीक्षा रहेगी।

- लेखक/संपादक/संगीतज्ञ/कवि
डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध-संस्थान
'संगीत-सदन', 94, महाविद्या कॉलोनी, द्वितीय चरण,
मथुरा-281 003 (उ.प्र.) मो. 98972 47880

■

जनजातीय काष्ठकला

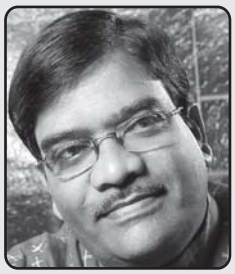

लक्ष्मीनारायण पयोधि

कलाएँ आत्मा की अभिव्यक्ति होती हैं। कलाकार आत्मा की विभिन्न भाव-मुद्राओं को पढ़ता और गढ़ता है। उन्हें आकार,रूप,सौन्दर्य और आकर्षण देता है। वह उनकी भाषा का सर्जक होता है। इसलिये तमाम अर्थों में कलाकार रचयिता होता है।

जनजातीय संसार में कलाओं का विशिष्ट स्थान है। इनके माध्यम से जनजातीय संवेदना की मौलिक कलात्मक सूझ और समझ देखी और अनुभव की जा सकती है। इस कलात्मक अनुभूति का प्रभाव उनकी जीवनचर्या में भी स्पष्ट दिखायी देता है। प्रत्येक जनजाति की चित्रांकन और मूर्ति गढ़ने की प्राय: अलग शैली होती है,जो उनकी जातीय स्मृतियों, परंपरा और परिवेश को चिह्नित करने में मदद करती है। जनजाति समुदाय प्रारंभ से ही वनों के निकट रहते आये हैं। जंगल पर इनकी निर्भरता इतनी अधिक है कि नैसर्गिक रूप से ये दोनों एक-दूसरे के आत्मीय और पूरक नज़र आते हैं।

गुफ़ा-जीवन से बाहर आकर मनुष्य ने सर्दी,गर्मी और बरसात से बचकर रहने के लिये मकान बनाया। संभवत: यहीं से प्रारंभिक मनुष्य को कलाबोध हुआ और उसका उत्तरोत्तर विकास भी होता गया। मकान के निर्माण में उसने लकड़ी के साथ बाँस, फूस, पत्तों, मिट्टी आदि का उपयोग किया। लकड़ी को काटते-छीलते-तराशते हुए उसकी कल्पना ने उसमें विभिन्न रूपाकारों को उकेरना आरंभ किया और इस प्रकार काष्ठकला का जन्म हो गया। जनजातीय काष्ठकला मानव की उसी कल्पनाशीलता और अन्वेषणप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अनेक प्राचीन सभ्यताओं में उत्कृष्ट काष्ठकला के अवशेष मिले हैं, जिनमें अलंकृत भवन, मंदिर, मूर्तियाँ और विभिन्न जीवनोपयोगी शिल्प प्रमुख हैं। चीन, जापान, श्रीलंका, तिब्बत आदि बौद्ध धर्मावलंबी देशों में काष्ठ के विशिष्ट शैली के वास्तुशिल्प आज भी देखे जा सकते हैं। मिस्र, सुमेरियन,मेसोपोटामिया आदि सभ्यताओं में भी काष्ठकला के उत्कृष्ट नमूने देखे गये हैं। विद्वानों के अनुसार नीग्रो प्रजाति के अनेक मानव समूह काष्ठकला के विशेषज्ञ हैं। मूर्ति और मुखौटे तराशने में उन्हें महारत हासिल है।

भारत के लगभग सभी जनजाति समुदाय वृक्ष को देवता मानते हैं।उनके कई गोत्र भी वृक्षों के नाम पर हैं। जिस वृक्ष के नाम पर गोत्र है, वही उसका गोत्र-देवता भी। यह वनस्पति-जगत् से मनुष्य के रागात्मक संबंध और अंतर्निर्भरता की आदिम व्यवस्था है। इसलिये वे वनस्पतियों से उनके उपयोग के लिये अनुष्ठानपूर्वक अनुमति माँगते हैं और कृतज्ञता भी ज्ञापित करते हैं।

भारतीय संस्कृति में वृक्ष को अत्यंत पवित्र माना जाता है। चंदन,आम,जामुन आदि वृक्ष इसके उदाहरण हैं। यह मान्यता आदिम परंपरा से ही स्थापित और विस्तारित हुई है। सागौन की लकड़ी मकान और मूर्ति शिल्प के लिये उपयुक्त मानी जाती है। यह काटने-तराशने,उत्कीर्णन और मनचाहे रूपाकार गढ़ने के लिये अनुकूल होती है। इसलिये जनजातीय शिल्पी इस लकड़ी का इस्तेमाल अधिक करते हैं। शीशम और खैर की लकड़ी कठोर और मजबूत मानी जाती है। यह प्राय: मकान और फर्नीचर के लिये प्रयुक्त होता है।अखरोट का काष्ठ बारीक उत्कीर्णन के लिये उपयुक्त होता है। चंदन, आम, नीम, सागौन, शीशम, हल्दू आदि खिलौनों, मूर्तियों और घरेलू तथा कृषि उपकरणों के लिये काम में लाया जाता है। जनजाति समुदायों के लोगों में अपने कल्पनालोक के अनुरूप काष्ठशिल्प के माध्यम से विभिन्न रूपाकारों को प्राणवंत करने की सहज प्रवृत्ति देखी जा सकती है। वे प्रकृति के संसर्ग में रहते हैं,इसलिये प्रकृति के विविध रूपों और भंगिमाओं से जनजातीय कल्पना और भावलोक को विस्तार मिलता है। जंगल

और उसके जीव-जगत् से उनका भावसाम्य है, जिसे वे विभिन्न शिल्प-कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

जनजातीय लोगों की सौन्दर्यदृष्टि और उनका कलाबोध प्रकृति प्रदत्त है। इसी नैसर्गिक विरासत ने उन्हें काष्ठ, रेशे, पत्ते, जड़, मिट्टी, पाषाण, धातु और अन्यान्य पदार्थों से रूपाकार गढ़ने का कौशल बख़्शा है। वे इस विशिष्ट प्रतिभा को पूजाभाव से सँभाल कर रखते और नयी पीढ़ी को सौंपते हैं। उनकी शिल्प-कलाओं में सहजता, सरलता और सादगी के गुण प्रमुख रूप से विद्यमान होते हैं। पारंपरिक शिल्प-कलाओं की यह स्वाभाविकता जनजातीय जीवन-दर्शन को प्रतिबिंबित करती है। वस्तुत: कलाएँ जीवन और जगत् की ही प्रतिरचना होती हैं। कलाकार जो जगत् में देखता और अनुभव करता उसका ही पुनर्सृजन करता है। इस सर्जना में वह अपनी कल्पना से कुछ और बेहतर और सुंदर जीवन की छवियों को जोड़ता है, जिनकी कामना मनुष्य के अवचेतन में कहीं न कहीं अवस्थित होती है।यही कारण है कि कलाएँ मनुष्य को सार्थक और सुखमय जीवन की प्रेरणा देती हैं।

गोण्ड जनजाति समूह की मान्यता के अनुसार मुठवा पहांदी पारी कुपार लिंगो इस पंचखंड धरती का स्वामी है। उसी ने इसकी रचना की है। कोयतूर लिंगोपेन को समस्त कलाओं का नायक मानते हैं। इसलिये बस्तर में घोटुलगुड़ी का अधिष्ठाता लिंगोपेन माना जाता है। घोटुल वास्तव में मुरिया युवाओं का कला-मंदिर है और उसमें प्रतिष्ठित है समस्त कलाओं का प्रथम देवता-लिंगोपेन। वही नृत्य-संगीत और शिल्प-कलाओं का अन्वेषक और प्रशिक्षक है, इसलिये वह कोया पुनेम का कलागुरु भी है।

जनजातीय शिल्पकलाओं के दो स्वरूप हमारे सामने हैं - पहला उसका प्रारंभिक अनगढ़ रूप और दूसरा आधुनिक समझ से प्रभावित परिष्कृत रूप। आदिम स्वरूप की मिसाल के तौर पर बैगा जनजाति के आदि पुरखे नागा बैगा और नागा बैगिन की काष्ठ-प्रतिमाएँ तथा आधुनिक परिष्कृत काष्ठकला के उदाहरणस्वरूप भील जनजाति का दीवाण्या (दीपाधार) आदि देखे जा सकते हैं।

जनजातीय काष्ठकला को प्रमुख रूप से अलंकारमूलक, संस्कारमूलक, आस्थामूलक, जीवनोपयोगी शिल्प आदि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी दृष्टिकोण से यहाँ मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की काष्ठकला की चर्चा करने का प्रयास किया जा रहा हैं:

अलंकारमूलक काष्ठशिल्प:

जनजातीय वास्तु में अलंकरण के प्रयोजन से काष्ठ का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। गोंड, कोरकू, भारिया, भील, कोल आदि जनजाति के लोग मकान का ढाँचा सागौन, खैर, शीशम अथवा अन्य मजबूत काष्ठ के स्तंभों, पाटों आदि से करते हैं। वे स्तंभों और पाटों पर विभिन्न आकृतियाँ भी उकेरते हैं। उत्कीर्णन के ज़रिये अलंकृत सागौन के दरवाज़े, खिड़कियाँ, ताक आदि इन जनजातीय लोगों के मकानों में देखे जा सकते हैं। कोरकू लोग मकान को रोन कहते हैं। वे रोन के सड्डान (छप्पर) और मयाल में मजबूत लकड़ी का उपयोग करते हैं। लकड़ी के खंभों से बने ढाँचे का मध्य और मुख्य भाग नड्डुम रोन या माचघर कहलाता है। घर में पानी के मटके रखने की घनौची भी काष्ठकला का आकर्षक नमूना होती है। बस्तर की मुरिया जनजाति का युवागृह घोटुलगुड़ी तो संपूर्ण रूप से अलंकृत काष्ठकला का विलक्षण उदाहरण ही है। इसमें प्रयुक्त लकड़ी में कोई न कोई प्रतीकात्मक रूपाकार अवश्य होता है। इसके अलावा तंबाकू रखने की चुनौटी, टँगिये का हत्था, खैर या हर्रे की लकड़ी से निर्मित परातनुमा कटूक, खैर की लकड़ी की ओखली या सहकी, इसी लकड़ी का मूसल या उस्काल, पशुओं के गले में बाँधा जाने वाला ध्वनिसंकेतक कड़ुर्का या टापर, अनाज की कोठी को सुरक्षित ऊपर रखने के लिये प्रयुक्त जेरा, चमचा के रूप में उपयोग किया जाने वाला भिलवा लकड़ी से बना चाटू या सुक्कूड़, अनाज-मापक कांगणी (भील), बैलगाड़ी के विभिन्न हिस्से, हल या नागर, पाटा, खटिया, पटे, माच या मचिया, डोंगी आदि अनेक घरेलू और कृषि उपकरण आदि अत्यंत कलात्मक होते हैं, जिन पर काष्ठकला का बारीक काम देखा जा सकता है। बस्तर की मुरिया स्त्रियों द्वारा केशविन्यास के साथ काष्ठ की कलात्म कंघियाँ धारण की जाती हैं। इन कंघियों पर सरल और वक्र रेखाओं के माध्यम से विभिन्न ज्यामितिक चित्र उकेरे जाते हैं। अलंकार के रूप में प्रयुक्त इन कंघियों की सामाजिक मान्यता भी है। जनजातीय क्षेत्रों में प्रयुक्त दर्पण के फ्रेम और भीलों की दीवाण्या भी काष्ठकला के सुंदर नमूने हैं।

संस्कारमूलक काष्ठशिल्प :

विभिन्न जनजातियों में जन्म,विवाह और मृत्यु-संस्कारों में काष्ठशिल्पों का उपयोग परंपरागत रूप से होता आया है। जन्म-

संस्कार में आजकल लकड़ी के पालने का उपयोग किया जाने लगा है। अधिकतर जनजातियों में विवाह के अवसर पर मंडप में स्तंभ स्थापित करने की परंपरा है। इसे गोंड मगरोहन या मगरोही, बैगा सजन, भारिया मण्डा या मूढ़ा, पण्डो गऊरा खूँटा और बस्तर के गोण्ड जनजाति समूह के लोग इसे माँगरोहन खाम कहते हैं। इसके निर्माण में धार्मिक मान्यता के अनुसार गोण्ड साल, बैगा चार, भारिया हल्दू, कोरकू महुआ आदि वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग करते हैं। मगरोहन के अलावा विवाह के अवसर पर प्रयुक्त झूमर, सुआ, सतैली, सिधौरा आदि कलात्मक काष्ठफलक मांगलिक प्रतीक माने जाते हैं। मगरोहन में विभिन पशु-पक्षियों के प्रतीक उकेरे जाते हैं। जनजातीय परंपरा में अपने पुरखों की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये स्मारक-स्तंभ स्थापित करने का प्रचलन है। इन स्मृति-स्तंभों के लिये भील लकड़ी, पत्थर या सीमेंट का उपयोग करते हैं। अपने पूर्वज की गौरवगाथा का स्मरण कराने वाले इस स्तंभ की स्थापना उत्सवपूर्वक की जाती है। भील इसे गाता या गातला, कोरकू मण्डा और बस्तर के दण्डामी माड़िया बीत, मट्ठ या खंभ कहते हैं। कोरकू मण्डा के लिये सागौन, सेमर या आम की लकड़ी का उपयोग करते हैं, जिस पर मानव-आकृति, सूर्य-चन्द्रमा, वृक्ष, पशु-पक्षी, गुदने आदि के चिह्न विधिवत उकेरे जाते हैं। स्मृति-स्तंभ की स्थापना के लिये कोरकू समुदाय द्वारा सिडोली का आयोजन का आयोजन किया जाता है। अन्य जनजातियाँ भी उत्सवपूर्वक ही इसकी स्थापना करती हैं। बस्तर के माड़िया साल-सागौन और मुरिया महुए की लकड़ी का उपयोग इन स्तंभों के लिये करते हैं। इन जनजातीय स्मृति-स्तंभों में गोत्र-चिह्नों और प्रकृति के विभिन्न उपादानों के दर्शन होते हैं।

आस्थामूलक काष्ठशिल्प :

जनजातीय जीवन-दर्शन में आस्था केन्द्रीय तत्व है। यह आस्था समय-समय पर प्रकृति, देव-जगत् और पितरों के प्रति अभिव्यक्त होती है। प्रकृति और पुरुष यानी शिव और शक्ति विभिन्न रूपों में उनके धार्मिक विश्वास के केन्द्र में हैं। अपनी आस्था की अभिव्यक्ति के लिये वे मान्यता के अनुसार देवी-देवताओं की प्रतीकात्मक काष्ठ, पाषाण, धातु आदि के रूपाकार स्थापित कर पूजा-अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार की मूर्तियों को गढ़ने में उनकी कल्पनाशक्ति, कलाबोध और शिल्पकौशल चमत्कृत करते हैं। काष्ठ से निर्मित ऐसे आस्थाजन्य प्रतीकों में बस्तर के आँगापेन, डोकरा-डोकरी, हिंगलाजिन, बंजारिन, भीमादेव, पाटदेव, माताझूला, गुड़ीस्तंभ, एरनेल्ला मुसलोडू, पोम्मलैया, बामनम्मा, पोरसुंगा, चीकटिराजू आदि एलुपुलु, सरगुजा क्षेत्र के करमदेव, नागदेव, उटाँगीनाथ, मोती बरहैया, मध्यप्रदेश के गोण्डी क्षेत्र के पड़ापेन, ठाकुरदेव, नारायणदेव, दूल्हादेव, बाघेसुर, खैरमाई, मसानमाई, भूतभल्लिन, डोंगरदेव, भैंसासुर, नागा बैगा-नागा बैगिन, जून्हादेवार-जून्हादेवारिन, शहडोल क्षेत्र की कठपुतली, गुड़ीखंभ, मेघनाथ खंभ, भील-भिलाला के बाबखंभ, घोटुलगुड़ी-खंभ, सेमलखंभ, बस्तर दशहरा-रथ आदि जनजातीय काष्ठकला के अप्रतिम नमूने हैं।

जीवनोपयोगी काष्ठशिल्प :

आरंभ से ही जनजाति समुदायों के जीवन में वृक्षों की बहुआयामी उपयोगिता रही है। अपने घरों की साज-सज्जा के साथ ही दैनंदिन उपयोग के उपकरणों का आविष्कार भी उन्होंने लकड़ी से ही कर लिया। मकान के कलात्मक दरवाजों-खिड़कियों, खूँटियों, दो मकानों की संधिस्थल को जोड़ने वाली अर्द्ध वृत्ताकार नालीनुमा डोंगियों, कृषि उपकरणों, रसोई में काम आने वाले औजारों, बर्तनों, कूटने-पीसने के उपकरणों, अनाज-मापक काठा-पायली, दालघोटनी, घिर्री, संदूक, घट्टीथाला, कठौती, चाटु, कांगणी, चौकी, ऊखर-मूसर, डौआ, कुरई या, कचरो, तैलयंत्र पीचीगेड़ा, धान-रोरनी, कुरेली, पशुशाला के खूँटों, पोंगलिया, बैलगाड़ी सहित परिवहन के विभिन्न साधन आदि काष्ठ के सहयोग से ही बनाये जाते हैं। बैगा और अन्य जनजाति के लोग विभिन्न उत्सव एवं नृत्य-प्रसंगों में अभिनय के लिये मुखौटे धारण करते हैं। ये मुखौटे पात्र के अनुरूप विभिन्न भंगिमाओं को अभिव्यक्त करने वाले होते हैं। बस्तर के जनजातीय लोग चूना और तंबाकू का मिश्रण रखने के लिये नक्काशीदार काष्ठ की विविध आकार-प्रकार की डिबिया रखते हैं, जिन्हें चुनौटी, गुट्टे या गोटा कहते हैं। जनजाति समूहों द्वारा प्रयुक्त अधिकतर वाद्य भी काष्ठ के होते हैं। भील, कोरकू और दंडामी माड़ियों के ढोल, ढोलक, मादल, मृदंग, ढाक या डहकी, नगाड़ा, टिमकी, डफ या ढपला और ढपली आदि ताल या ततवाद्य, चिटकोरा, चिटकुला, चुटकी, ठिसकी जैसे घनवाद्य तथा शहनाई, मोहरी और फेफरिया आदि सुषिर वाद्य जनजातियों के उत्सव, अनुष्ठान और विविध संस्कारों में नृत्य का अभिन्न हिस्सा हैं।

जनजातीय परंपरा में काष्ठ की शिल्पकृतियों का एक वृहत्तर संसार है, जिसके माध्यम से हम जनजातीय लोगों के व्यावहारिक विज्ञान की समझ, अन्वेषण और आविष्कार की क्षमता तथा विवेकसम्मत हस्तकौशल का गहराई से अनुव कर सकते हैं।

- ए-1, लोटस, स्प्रिंग वैली, कटारा हिल्स, बागमुगालिया,
भोपाल-462043, मो.नं. 9424417387

■

कुछ सवाल: कला की दुनिया से

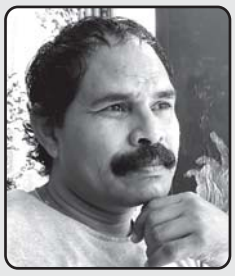

चेतन औदिच्य

चार-पांच वर्ष पूर्व, विश्व के कला जगत में एक बहुचर्चित घटना घटी। सन् 2019 में इटली के कलाकार मोरिजिओ कैटेलन ने मीयामी बीच के आर्ट बेसल की एक दीवार पर डक्ट टेप के सहारे एक केला चिपकाया। इसे वैचारिक कला कहा गया और मूर्तिशिल्प बताकर 'कॉमेडियन' नाम का शीर्षक दिया गया। दीवार पर चिपकाए गए केले को, दो-तीन दिन में बदल दिया जाता रहा, जिससे केला ताज़ा ही दिखे। इस 'कॉमेडियन' के दो संस्करण बिक गए (अर्थात दो बार केले को खरीद लिया गया)। एक केले की कीमत एक लाख बीस हज़ार डॉलर रखी गई। सियोल के लीम म्यूज़ियम ऑफ आर्ट में 'कॉमेडियन' अर्थात केले की प्रदर्शनी की जाती है। प्रदर्शनी के दौरान नोह हुएन सू नाम का एक दक्षिण कोरियाई कला विद्यार्थी, दीवार से केले को हटा कर आधा खा लेता है। बचे हुए केले के हिस्से को पुन: दीवार पर उसी जगह चिपका देता है। इस बार कलाकार कैटेलन ने केले अर्थात तथाकथित कृति 'कॉमेडियन' की कीमत एक लाख साठ हजार डॉलर रखी थी। कुछ दर्शक, नोह के केला खाने के कृत्य को कैमरे में कैद कर लेते हैं। रातों-रात केला पूरे विश्व में चर्चित हो जाता है। टिप्पणियां आती है कि, एक कला-छात्र ने एक लाख साठ हजार डॉलर के केले का नाश्ता कर लिया। लड़का एक समाचार एजेंसी को बयान देता है, ''उसे लगा कि केला खाना अपने आप में कला मानी जा सकती है।'' व्याख्या की गई, ''आधुनिक कला की कृतियों को नुकसान पहुंचाना भी तो एक कला हो सकती है।''

कलाकृति केला और कलाकार कैटेलन धूमकेतु की तरह कला जगत में चमक जाते हैं।

इस घटना और कॉमेडियन के प्रदर्शन के बाद व्यापक स्तर पर वातावरण बनता है अथवा बनाया जाता है। प्रचार की हड़बड़ी मच जाती है। न्यूज़ चैनल्स, अखबार, गैलरी वाले, व्यवसाई, कलाकार और आम जनता, अपने-अपने हितलक्ष्यों को साधते हुए प्रतिक्रिया देते हैं। उदाहरण देखिए- अमेरिका की प्रसिद्ध मॉडल किम कार्दाशियन अपने नग्न स्तन पर डक्ट टेप से केला चिपका कर फोटो सेशन करती है। अभिनेत्री और लेखिका ब्रुक शील्ड्स अपने कपाल पर केला चिपकाती है और इस केप्शन के साथ में इंस्टाग्राम पर उसे पोस्ट करती है कि 'यह एक महंगी सेल्फी है'। कंपनी नाइक अपने जूतों पर डक्ट टेप से केला चिपका कर प्रचार में उतर जाती है। प्रसिद्ध उत्पाद बर्गर किंग कॉमेडियन के समानांतर बहुत कम कीमत के साथ केला और ब्रांड का नाम विज्ञापित करता है। कोई अपनी कार पर तो, कोई अपनी दुकान पर डक्ट टेप से केला

'कॉमेडियन' की प्रदर्शनी के दौरान दर्शकों की भीड़

चिपकाता है। किसी ने जीसस के हाथ में केला और डक्ट टेप पकड़ा दिया, तो किसी ने प्रसिद्ध पेंटिंग मोनालिसा की आंख को ही केले से ढक दिया। यहां तक कि आदमी अपने आप को केले का रूप देते हुए खुद को डक्ट टेप से दीवार पर चिपका देता है। कलाकार जो मोरफोर्ड भी कला के इस दंगल में कूद पड़ते हैं। उन्होंने कैटेलन के खिलाफ 'केला और ऑरेंज' नामक सन् दो हज़ार में किए गए अपने काम के कॉपीराइट उल्लंघन का मुकदमा दर्ज करा दिया । कॉमेडियन प्रदर्शनी के दूसरे संस्करण अर्थात दूसरी बार केले को खरीदने वाले बिली और बीट्राइस कॉक्स ने कहा, ''हम इससे अच्छी तरह वाकिफ हैं कि 'कॉमेडियन' उत्पादन का एक अन्यथा सस्ता और खराब होने

वाला टुकड़ा है, और कुछ इंच का डक्ट टेप है। किंतु जब हमने देखा कि कला और हमारे समाज के बारे में, सर्वाधिक बहस छिड़ गई है तो, हमने इसे खरीदने का फैसला किया। हमें मालूम है कि हम एक जोखिम उठा रहे हैं लेकिन आखिरकार हमें लगता है कि कैटेलन का केला एक प्रतिष्ठित ऐतिहासिक वस्तु बन जाएगा।'' नोह की तरह घटना की पुनरावृत्ति होती है। जार्जिया का प्रदर्शन कलाकार डेविड दातुना एक ''भूखा कलाकार'' के रूप में जाना जाता है। उसने आर्ट इंटरवेंशन करते हुए कॉमेडियन के एक संस्करण में कैटेलन के केले को खा लिया और प्रतिक्रिया दी, ''भौतिकवाद के रूप में हम जो कुछ भी देखते हैं, वह सामाजिक अनुकूलन (स्वीकारोक्ति) के अलावा कुछ भी नहीं है। किसी वस्तु के साथ कोई भी सार्थक बातचीत के लिए मैं भूखा हूं।''

अमेरिका की प्रसिद्ध कला पत्रिका 'द आर्ट न्यूज़' ने प्रश्नकर्ता के अंदाज़ में कहा कि कला टुकड़ा निंदा के लिए था, या रोमांच हेतु! 'द गार्जियन' ने कॉमेडियन को संदिग्ध रूप से प्रतिभाशाली बताया । लेखक ब्रायन सी निक्सन ने अपनी पुस्तक में लिखा कि, 'कम से कम, कहने के लिए 'कॉमेडियन' समकालीन कला की जंगली दुनिया पर एक टिप्पणी है। यह बताता है कि संस्कृति किस तरह से कला को समझती है व्याख्या करती है और उससे जुड़ती है,' इस तरह हम देखते हैं कि कैसे विश्व के कला जगत में एक बेतरतीब हलचल का माहोल उपजा दिया जाता है।

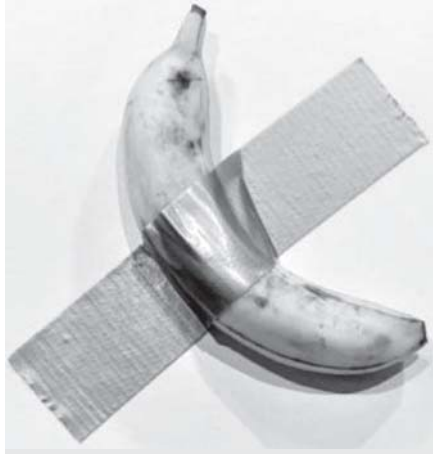

मोरिजिओ कैटेलन की कृति 'कॉमेडियन'

निश्चित ही कला जगत का यह एक सच है। किंतु इस परिदृश्य से बहुत सारे ज्वलंत प्रश्न निकलकर आते हैं –

- केला, कलाकार और बाज़ार की तमाम भेड़िया–धसान के बीच आखिरकार 'कला' कहां है? दुनिया के एक सुदूर इलाके में चुपचाप साधना कर रहा कलाकार, लाचारी में चुपचाप इन सारी घटनाओं को अवाक्=सा, ताके जा रहा था, क्या यह सच नहीं है ?
- सौंदर्य के जिन प्रतिमानों से कला का गहरा संबंध है, वह 'सौंदर्य' इस पूरे घटनाक्रम में कहां दिखाई देता है ?
- 'कलाकृति को नुकसान पहुंचाना भी तो एक कला हो सकती है' यह वाक्य कला में अराजकता का चरम् नहीं बताता ?
- केले के टुकड़े और डक्ट टेप को ऐतिहासिक वस्तु बन जाने की घोषणा करने वाले किस विचार–स्वरुप की प्रतिस्थापना करना चाहते हैं ?
- ब्रायन सी निक्सन का यह कथन ठीक होगा कि 'कॉमेडियन प्रदर्शनी समकालीन कला की जंगली दुनिया पर एक टिप्पणी है।' परंतु कॉमेडियन स्वयं एक जंगली दुनिया का प्रदर्शन नहीं करता! वह भी किसी का नकल किया हुआ प्रदर्शन ?
- डेविड दातुना का कहना ठीक है कि 'किसी वस्तु के साथ कोई भी सार्थक बातचीत इसे कला में बदल सकती है।' लेकिन भूखे कलाकार दातुना की प्रतिक्रिया के पीछे प्रचार–तत्व का वैचारिक आक्रमण नहीं दीखता ?
- दीवार पर केला चिपका देने जैसे एक सामान्य से कृत्य को पूरी दुनिया तूल देती है, बस इसीलिए, कि उनके पास संसाधन और प्रचार के माध्यमों का सामर्थ्य है! बरसों–बरस लगाकर अपनी कृतियों को तैयार करने वाले संसाधन विहीन कलाकार की नियति गुमनाम ही मर जाने की होगी ?
- यह सच है कि कला अपनी दिशा स्वयं घड़ती है। किंतु कला के नाम पर किए जाने वाले, इस सारे प्रपंच द्वारा कलाओं को दिशाहीन पथ पर नहीं धकेला जा रहा ?

ऐसे अनेकानेक प्रश्न है जो आज के कलाकार को विचलित करते हैं। पश्चिमी कला जगत की सच्चाई यह है कि वह कला को भौतिक स्वरुप से आगे नहीं जाने देना चाहता। कला के रूप, कला के विचार और कला की प्रस्तुति के लिए वह भौतिकता को ही पैमाना बनाए रखना चाहता है। इसी पैमाने से नाप कर, कला को 'वस्तु' बनाए रखने की जुगत प्रदर्शित करता रहता है। उनकी दृष्टि में कला उत्पाद के संजाल का एक उपकरण मात्र है, आत्मिक सौंदर्य का कतई नहीं! इस हेतु अनेकों तर्कों – कुतर्कों के जाल गढ़े जाते हैं। कलाकारों की मन: स्थिति को शनै: शनै: उसी और धकेलने का उपक्रम जारी रहता है। कला की इन स्थितियों के मध्य याज्ञवल्क्य और विदग्ध शाकल्य के बीच सैंकड़ों वर्ष पूर्व हुए इस संवाद को देखिए--- शाकल्य पूछते हैं, यह जो चारों ओर

कृति 'कॉमेडियन' के प्रदर्शन के बाद की प्रतिक्रिया के चित्र

रोशनी है यह किसमें समाई हुई है? याज्ञवल्क्य जवाब देते हैं, यह रोशनी आंखों में समाई हुई है। तब शाकल्य पुन: पूछते हैं तो फिर ये आंखे किसमें समाई हुई है? ऋषि उत्तर देते हुए आगे कहते हैं, आंखें, रूप में समाई हुई है, क्योंकि आंखों के द्वारा ही रूप को देखा जाता है। तब शाकल्य फिर से पूछते हैं, तो फिर ये रूप किसमें समाया हुआ है? तब याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं, रूप तो हृदय में समाया हुआ है। हृदय से ही रूपों को जाना जाता है। शाकल्य सहमत हो जाते हैं और कहते हैं, हां बात तो ऐसी ही है।

आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये हमेव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य।-(बृह.उप.3/9/53)

इस संवाद से विज्ञान की उस निष्पत्ति का समर्थन तो होता ही है कि वस्तु अथवा रंग प्रकाश का गुण है किंतु साथ ही यह भी स्पष्टत: घोषित होता है कि कलाएं मात्र 'भौतिक-तत्व' अथवा 'वस्तु' नहीं है। उनका प्रतिष्ठान तो हृदय ही है। हृदय जो नितांत अभौतिक है। इससे हम भारतीय कला की हजारों वर्षों की उस यात्रा को भी समझ सकते हैं जो अंतत: मानव जीवन को, उत्थान हेतु प्रेरित करती है, ना कि बाजार और व्यापार के लिए! शुभ मस्तु।

संपर्क -49-सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर,
उदयपुर-313001 (राज.), मो.: 9602015389

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

मेरे दादा

डॉ. सुमन चौरे

जाते सूरज की परछाई लम्बी-लम्बी, धुँधली-धुँधली दूर तक जाते-जाते, जैसे गुप्प अंधेरे में विलीन हो जाती है, ऐसे ही दादा की याद मन के गुप्प अंधेरे में बैठी है। फिर किरण के पड़ते ही सामने खड़ी हो उठती है। पोस्टमैन भी ऐसे ही एक प्रकाश की किरण के रूप में आता है। पोस्टमैन देखकर लगता है कि यह दादा की चिट्ठी लेकर आया होगा, और चिट्ठी में क्या लिखा होगा, ''भला आदमी दुई हरूफ़ को कारड भी नी लिखता, क्यों पढ़ाया-लिखाया होगा तुमको।'' बात तो सच है, पाठशाला के अलावा दादा ने पढ़ना-लिखना सिखाया।

कालमुखी के घर में दीवाल में काँच लगी बड़ी-बड़ी अलमारियाँ थीं, जिनमें पुस्तकें ही पुस्तकें थीं। एक अलमारी से लगा दादा का पलंग था। जिसपर मैं उनके पास सोती थी और जबतक नींद नहीं आती थी, काँच पर हाथ फेरती रहती थी। कभी-कभी दादा की किताब के पन्नों में आँखें गड़ा देती थी। अपने सिरहाने कंदील रखकर दादा देर रात तक पढ़ते थे।

दादा कहते थे, ''किताब में लिखे अक्षरों को देखते जाओ, देखते जाओ, एक दिन तुम उनको पहचानने लगोगी; और फिर अक्षर तुमको पहचाननें लगेंगे, तो तुम्हारी अक्षरों से और किताबों से दोस्ती हो जायगी।'' मुझे उनका यह सूत्र याद भी है, जब में कक्षा दूसरी में थी, मैंने काँच की अलमारी में रखी एक पुस्तक का नाम हिज्जे कर-करके सुनाया 'बेलाफूले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी'। दादा बहुत खुश हुए थे। उन्होंने कहा था, ''सब पुस्तकें पढ़ डालना''।

सुबह आँख खुली, दादा अपने नियम के अनुसार ऊपर चाँदनी (छत) की दीवाल पर बैठकर लिख रहे थे। सुबह उन्होंने सबको बताया, कि मैंने कितना कठिन नाम पढ़ लिया। बाई ने कुछ व्यंग्यभरी मुस्कान से कहा, ''तुमजऽ बहुत छे।'' याने लिखने-पढ़ने वाले आप ही बहुत हो। बाई ने सच कहा, क्योंकि जब दादा लिखते पढ़ते थे, उन्हें कोई सुध नहीं रहती थी। यहाँ तक कि उन्होंने चाय-दूध भी पीया या नहीं। कई बार तो वे कहा देते थे, कि ''आज तो संझा हुई गईज जीम्या तक नी''। बाई तो क्या हमारी अज्जी माँय हँसते हुए कहती थीं, ''नाना अरू खाणू होय तो खाओ पणऽ झूठ मत बोलो''। और दादा ठहाका लगाकर पूछ लेते थे, ''क्यों बोल सुमन, हाऊँ जीमी लियोज काई''। फिर से एक ठहाका लगाते थे।

यह तो लेखन के साथ समरसता का एक उदाहरण था। दादा इतने सरल थे इसलिए उनका लेखन भी सरल-तरल रहा, जो सबके मन मस्तिष्क में सहजता से उतर जाता था। दादा की रचना जैसे ही पूरी होती थी, वे अपने काका, मुंशी दाजी, बड़े भाई - बाबू

खंडवा के दो साहित्यिक नक्षत्र रामादादा एवं माखन दादा

(पुरुषोत्तम), छोटे भाई-शिवा (शिवनारायण), माँय, बड़ी बाई, सबको एक साथ बैठाकर सुनाते थे। हमारी अज्जी माँय भी बड़ी विदूषी थीं। उस युग में भी वे संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन करती थीं, जब महिला शिक्षा का अभाव था। वे दादा के साथ धर्म ग्रंथों और उनके पात्रों पर चर्चा भी करती थी। घर में बच्चों को घुटी में ही यह संस्कार पिला दिए गए थे, कि अध्ययन करना आदमी का स्वभाव बन जाना चाहिए।

हमारे गाँव कालमुखी में दादा की रचनाओं के श्रोता उनके प्रिय मित्र जीवन काका, छोगीलाल दाजी, मोजीलाल फुवाजी, चम्पालाल दाजी और हमारे खेती के साजी फत्तू फूवाजी और भीली

बोलने वाली दगड़ी बुआ। हमारे गाँव की दाई जिसको सब रम्भई जीजी कहते थे, वह तक पूछती थी, ''नाना भाई कई नवो लिख्यो ?'' दादा के लेखन की यह आत्मा है, गाँव और गाँव के लोग। सुबह सात बजे के पहले अपना लेखन कार्य पूरा करके दादा गाँव की गली-गली में एक फेरी लगा लेते थे, कोई बीमार हो तो घड़ी दो घड़ी उसके घर रुकते, किसी ने आवाज़ दी कि ''भाई आई जाव'', तो दस-पाँच मिनट उसके घर की उखण्डी खाट पर बैठकर प्रेम स्नेह की बात कर लेते थे। ''खेत मंऽ काई वायो ? भसी दूध दई रहीज की नईं ?'' आदि-आदि।

तब कालमुखी में डाक की व्यवस्था नहीं थी। हमारे गाँव से आठ मील दूर निमाड़ खेड़ी रेलवे स्टेशन पर डाक आती थी। कालमुखी में सिर्फ एक दिन बुधवार को वहाँ का पोस्टमैन डाक लाता था, दूसरा सड़क मार्ग भी कच्चा ही था, इसलिए कभी-कभी जरुरी डाक लेने के लिए दादा साइकिल से जाते थे या फिर अपने छोटे भाई के साथ घोड़े पर जाते थे। कालमुखी से बाहर जाने के लिए यातायात के साधन कम ही थे। गाड़ी बैल या घोड़ा से सात मील दूर अत्तर स्टेशन जाते थे। जहाँ से छोटीलाईन की रेलगाड़ी द्वारा इन्दौर या खण्डवा पहुँचते थे। गाँव में शाला भी चौथी तक थी। हम भाई बहनों को आगे पढ़ाने के लिए दादा-बाई खण्डवा रहने लगे, वार-त्योहार सब गाँव में ही मनाते थे। खण्डवा आने का एक लाभ तो यह कि नियमित डाक की सुविधा हो गई, दूसरा माणिक वाचनालय की पुस्तकों का खजाना और तीसरा किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण था, दादा माखनलालजी चतुर्वेदी का सतत् सानिध्य।

दादा जब भी कहीं से रेल द्वारा खण्डवा आते तो माखन दादा को प्रणाम करने के बाद ही घर पहुँचते, भले ही ताँगा थोड़ी देर बाहर रास्ता देखे या फिर देर लगने की संभावना दिखे, तो दादा उसी ताँगे से घर पहुँचा देते थे। माखन दादा कहते, हमने देख लिया था, तीन पुलिया पर से कालमुखी की छोटी लाईन वाली गाड़ी आ गई है, तुम न आते तो पकड़े जाते। माखन दादा के लकड़ी की जाली वाले बरामदे से रेल गाड़ियाँ दिखती थीं। ऐसा माखन दादा ने इसलिए कहा क्योंकि एक बार दादा मालीकुँआ के रास्ते से पैदल घर आ गये थे। माखन दादा से मिलने अगले दिन सुबह गए, मैं भी साथ हो ली थी। तब दादा ने पूछा कि, ''कब आये ?'' हमारे दादा ने उत्तर दिया ''कल''। थोड़े रुष्ट होते हुए माखन दादा ने कहा ''पहली हाजिरी यहाँ। फिर बाद में और कहाँ '' इतना कहकर हँस पड़े।

कालमुखी में दिनचर्या की जैसी शुरुआत होती थी, वैसा ही तारतम्य खण्डवा में भी बना रहा। दादा सुबह साढ़े पाँच बजे उठते, लेखन कार्य कर स्नान करके सात बजे माखन दादा के घर पहुँच जाते थे। दादा को आँखों में कमज़ोरी आ गई थी, उनका आदेश था कि ''रामनारायण, सुबह अखबार तुम्हें ही पढ़कर सुनाना है, उस अखबार को बासी नहीं होना चाहिए।'' और हमारे दादा इस स्नेहिल आदेश का पालन करने में कभी नहीं चूके। दादा रात में जो लिखते, अखबार की खबरों के बाद अपनी रचना सुनाते थे। कभी-कभी अखबार के पहले ही अपनी रचना सुना देते। तो दादा, ठहाका लगाकर कहते थे, ''रामनारायण, इतनी अच्छी रचना के बाद अखबार की खबरें क्या सुनना।''

दादा कोई भी रचना लिखते थे, तो पूरी होने पर आवाज देते थे - ''शिवा, नारायण और सुमन, बुला लो अपनी बाई को भी।'' रचना पाठ करते समय उनके चेहरे पर एक संतुष्टि का भाव होता था। खंडवा में रहकर भी दादा अपने गाँव से कभी दूर नहीं रहे, बस रचना के पहले श्रोता बदल गए। अपनी पुस्तक जैसे ही प्रकाशित होकर आती, तो पहली प्रति बाई को देते थे, जो अपने इष्ट श्रीराम के चरणों में रखती थीं। फिर बड़े भाई, छोटे भाई और भतीजे नारायण को देकर माखन दादा को भेंट करने जाते थे। यह क्रम चलता रहा, जब तक माखन दादा रहे।

दादा के साथ हम परिवारजनों का भी सौभाग्य रहा। जब भी कोई साहित्यकार आता, तो माखन दादा बुलावा भेजते, ''रामनारायण जल्दी आ जाओ''। और दादा भी चलते-चलते पैरों को जूतों में डालते हुए, बाई को कह जाते भोजन बनाकर रखना। देश के प्रकाण्ड विद्वान साहित्यकारों ने हमारे घर के चूल्हे के सामने नीचे आसन पर बैठकर बाई के हाथों की नरम-नरम फुल्का रोटी और जुवार का रोटा खाया।

खण्डवा के तुलसी जयन्ती का विशाल साहित्यिक आयोजन होता था। माणिक वाचनालय में तीन दिवसीय आयोजन होता था। देश के मूर्धन्य विद्वान साहित्यकारों की परिचर्चाएँ और कवि सम्मेलन होते थे। एक बार इसमें पंडित विद्यानिवासजी मिश्र भी आये थे। दादा ने कहा, ''पण्डितजी घर चलिए''। मिश्रजी ने कहा ''ऐसा कहकर आपने मुझे छोटा कर दिया। मैं तो तुम्हें अपनी आँखों में बाँधे था, कि कब समारोह समाप्त हो और आपके साथ चलकर उस स्थान को प्रणाम करूँ जहाँ से इतना ललित उपजता है।'' दादा ने मिश्रजी का हाथ पकड़कर सिर से लगा लिया। साहित्यिक आयोजनों में दादा हम बच्चों को भी साथ ले जाते थे। उनका कहना था, ''अभी कुछ समझ न आये पर बड़े होकर जब कभी साहित्य की चर्चा होगी, तो तुम्हारे भीतर डाला गया यह बीज फल-फूल

उठेगा।''

बाई ने पीतल की चम-चम थाली में लड्डू व बेसन की पापड़ी सेंककर दी। दादा ने कहा ''आप स्वयंपाकी हैं।'' तो बाई ने पूछा ''पपीता खायेंगे ?'' मिश्र जी ने हामी भरी। वो पपीता भी दादा और मिश्रजी कार्यक्रम स्थल से पैदल घर आते समय लेते हुए आये थे। अब इतनी धीरज कहाँ, दादा भीतर जाकर स्वयं ही पीतल की थाली में धोकर पपीता और चाकू ले आये और कहा, ''पण्डितजी लीजिए, यह भी स्वयंपाकी है'' (पेड़ का पका है)। तेज ठहाके के साथ कमरा गूँज उठा। दादा ने थाली उनके सामने रखी तो मिश्रजी ने कहा, ''भाई मैं स्वयंपाकी हूँ, स्वयंकाटी नहीं।'' एक बार फिर ठहाका लगा। फिर साहित्यक चर्चाओं का दौर चलता रहा।

दादा का यह स्वभाव रहा कि वे जब भी किसी अन्य शहर में जाते थे तो वहाँ रिश्तेदारों और साहित्यकारों से उनके घर मिलने अवश्य जाते थे। ऐसे ही जब विद्यानिवासजी मिश्र के घर गए थे तब समयाभाव के कारण अधिक चर्चा नहीं हो सकी थी। तीसरे ही दिन मिश्रजी का पत्र आया, दादा ने पढ़कर सुनाया, ''रामनारायण भाई, घड़ी दो घड़ी का ही सही, पूस की धूप सा, तुम्हारा आना सुखद लगा।''

खण्डवा के कई साहित्यिक आयोजनों में भवानी प्रसादजी मिश्र आते थे, तब गेस्ट हाउस में रुकने की व्यवस्था करने वाले आयोजकों से वे कहते थे, मैं ''गेस्टहाउस'' का आदमी नहीं हूँ, मैं तो परिवार का आदमी हूँ, परिवार के बीच ही रहूँगा। वे सदा हमारे साथ घर पर ही ठहरते थे। एक तख़्त पर दोनों दादा, भवानी दादा और हमारे दादा। न जाने कब सोते थे, न जाने कब तक बातें करते थे, ठहाके लगाते रहते थे। एक बार भवानी दादा को बुख़ार आ गया, तो वे पाँच दिन रुके। जैसे ही बुखार उतरता, वे कहते किसकी क्या फरमाइश है, और वे भावमय हो कविता कहते थे। वे दादा से कहते थे, ''भाई, मुझे कविता सुनाने का जितना सुख मंचो पर नहीं होता, उससे कहीं अधिक आत्मीय सुख तुम्हारे परिवार में बैठकर सुनाने से होता है।''

यह संयोग रहा ही रहा, उसी समय हमारी बाई को भी बुख़ार आ गया। जब भवानी भाई का बुखार उतरा तो उन्होंने पूछा, ''पूछा तुम्हारी माँ नहीं दिखाई दी।'' हमने कहा, उन्हें भी बुखार है। तो वे बोले ''चलो भी एक बुखार वाला दूसरे बुखार वाले से नहीं मिलेगा तो कविता कैसे बनेगी ?'' और वे दूसरे कमरे में बाई से मिलने गए। उन्होंने कहा, ''चलो भाभी, बुख़ार देवर का गया तो भाभी का भी जाना चाहिए।''

भोजपुरी लोक साहित्य के विद्वान डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, कालिदास समारोह के लिए उज्जैन गए थे। उनका मन हुआ कि मध्यप्रदेश के किसी गाँव में निमाड़ के लोक साहित्यकार रामनाराण उपाध्याय भी रहते हैं। महज ऐसी प्रीती से से हमारे घर दादा से मिलने आये। खण्डवा से इटारसी होते हुए इलाहाबाद जाने की योजना थी उनकी। जब वे घर आए तो जैसे गंगा और रेवा का मिलन। न पहले किसी ने किसी को देखा किन्तु पत्रों के माध्यम से जो गंगदार फूट पड़ी वह इतनी प्रबल और पवित्र कि किसी को कल्पना तक न थी। उनके आते ही दरवाज़े में दादा ने उनके चरणपर्श किए और दोनों बहुत देर तक गले मिले। उस स्नेहवर्षा को तो देखने वाला ही समझ सकता था। जाते समय कृष्णदेवजी ने कहा, ''मात्र कुछ घण्टों के लिए आया था, पाँच दिन कैसे रह लिया ? यह या तो तुम्हारे घर का चुम्बक है या तुम्हारे परिवार की प्रीती या तुम्हारी डेढ़ पसली का बंधन।'' अन्य विद्वानों की तरह वे भी चूल्हे के पास पालथी मारकर भोजन करते थे। वे कहते थे कि हमारा आपका बोली, भाषा का लोक रिश्ता है, और लोक का रिश्ता तो सदैव चूल्हा तक ही रहता है। एक नि भोजन करते, हमारे दादा ने पूछा, ''पण्डितजी, लोग शहर की ओर भाग रहे हैं, फिर लोक भाषा, लोक बोली, लोक साहित्य का क्या भविष्य होगा ?'' पने हाथ मे ग्रास थामते हुए उन्होंने कहा था, ''लोक भाषा और लोक साहित्य की जड़ें बहुत गहरी हैं, वे जहाँ जायँगी फल-फूल उठेंगी। लोक इतना कमजोर नहीं कि छिन्न-भिन्न हो।'' मालवी के लोक साहित्यकार डॉ. श्याम परमार जब भी आते थे तो घर में बड़ा ही मनोरम दृश्य रहता था। वे मालवी में बात करते और दादा निमाड़ी में। दादा उनसे कहते थे, ''मालवी-निमाड़ी सहोदर बहनें हैं।'' तो परमारजी कहते थे, ''और हम दोनों सह-स्याही भाई हैं।''

नरेन्द्र कोहली जैसे लेखक खण्डवा मात्र इसलिए आये थे कि रामनारायण उपाध्याय के लेखन को पढ़ा तो वे मिलने के लिए व्यग्र हो उठे। एक गाड़ी से खण्डवा आकर, अगली गाड़ी से लौटने के हिसाब से आए थे। लेकिन तीन दिन रुक कर गए। इनकी साहित्यिक चर्चाओं का रसपान जिसने किया वही जान सका कि साहित्यिक अमृतपान क्या होता है। हमारे अन्य अतिथियों की तरह वे भी औपचारिकताओं में नहीं पड़ते थे। अपनी नित्य आवश्यकताओं के लिए स्वयं ही कुँए से पानी खींचते थे। हम बच्चे मदद के लिए हाथ बढ़ाते थे, तो मुस्कुराकर कहते थे, ये भी जीवन के सुखद क्षण हैं।

विष्णु प्रभाकर तो दादा के अन्तरंग मित्र थे। वे भी कई बार, कुछ दिन रुकने का कार्यक्रम बनाकर घर आते थे। दोनों मित्रों की

साहित्यिक चर्चाओं के बीच दिन भर घर में आनन्द का वातावरण रहता था। वे कहते थे, रामनारायण भाई के साथ आत्मिक सुख मिलता है और इसी आत्मिक सुख प्राप्ति की लालसा मुझे दिल्ली से दूर, यहाँ साहित्य कुटीर खींच लाती है। बालकविजी बैरागी का आना जाना लगा रहता था। वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें हम दादा से छुड़ा लाते थे और उनसे कविताओं और गीतों को सुनकर आनन्द लेते थे।

दादा को एक बड़ा शौक था—पत्र लेखन का। उन दिनों फोन आदि की इतनी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। दादा का मानना था कि पत्र के माध्यम से मन-से-मन की बात हो जाती है। सुबह उठकर दादा बहुत सारे कार्ड लिखते थे। उन दिनों डाक दो समय आती थी। पोस्टमैन चिट्ठी लेकर घर आए, उसके पहले ही वे पोस्ट ऑफिस पहुँचकर अपनी डाक लेकर आ जाते थे और पत्र पढ़कर तुरंत उत्तर लिखकर पोस्ट ऑफिस में डाल आते थे।

दादा की पुस्तक मिलने पर हरिवंशरायजी 'बच्चन' का पत्र आया। बच्चनजी ने पत्र में लिखा, ''पुस्तक 'धुंधले काँच की दीवार' मुझे समय पर मिल गई थी और मैं उसे पूरा पढ़ भी चुका हूँ। अभी निमाड़ के गीतों का नशा उतरा ही नहीं था कि आपकी यह दूसरी रचना मुझे पढ़ने को मिली। पुस्तक उठाकर छोड़ना मुश्किल हो गया। बहुत बार तो जोरों की हँसी रोकना भी मुश्किल हो गया। अकेले में यह हँसी कौतूहल का विषय भी बनी।...आपके व्यंग्य में कटुता का कोई भी आभास नहीं मिलता। व्यंग्य की यह सबसे बड़ी सफलता है।'' बड़े लम्बे पत्र होते थे उनके। उनके हस्ताक्षर ऐसे रहते थे जैसे अंग्रेजी में 'गुड' लिखा हो। प्रख्यात साहित्यकार और चिंतक श्री सच्चितानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' एक पत्र में लिखते हैं, ''प्रियवर, चिट्ठियाँ लिखने के मामले में अब बहुत पिछड़ जाता हूँ, फिर ऐसी स्थिति में लिखने बैठता हूँ, तो आपके जिस पत्र का उत्तर देना होता, उसे दो-तीन बार पढ़कर अभिभूत होकर रह जाता हूँ। और कुछ लिख नहीं पाता हूँ।''

दादा चले, कहाँ गए? यादों में हमारे बीच यहीं हैं। याद आता है कि दादा जब 'पद्मश्री' से अलंकृत हुए थे, तो ग्रामीणजनों ने उनके लिए लोक सम्मान समारोह किया। उस समारोह में उपस्थित ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त साहित्यकार नरेशजी मेहता भी थे। इस लोक सागर को देखकर वे बोले, ''बिना किसी आमंत्रण-निमंत्रण के, न सरकारी आदेश, फिर भी इतना बड़ा जनसैलाब, अपने खर्चे से समारोह में उत्साह से पहुँचे!' मैं रामनारायण भाई के इस लोकानुराग के प्रति नतमस्तक हूँ। वे किसी लोक नायक से कम नहीं है। मेरा सिर बार-बार नतमस्तक हो रहा है।''

दादा के एक ग्रामीण सखा ने निमाड़ी में कहा, ''जातू भाई, सिंगाजी जैसे गवलई, ओंकारजी जैसे भोला और निमाड़ी की माटी जसा सौंधी खुशबू वाला छे। उननेऽऽऽ निमाड़ी की सेवा करी, न निमाड़ सी उरिण हुया।''

इसी बात को विख्यात साहित्यकार डॉ. शिवमंगलजी सिंह ने भी बड़े सूत्र में कहा, ''रामनारायण भाई ने निमाड़ी की साधना की और निमाड़ को तीर्थ बना दिया।''

दादा को बार-बार प्रणाम!

- लेखिका - वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन, बावड़िया कला, पोस्ट ऑफिस,
त्रिलंगा, भोपाल-462039
मो.: 9819549984

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

एक छाँव नीम की

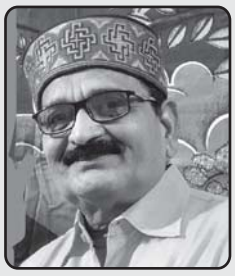

शिशिर उपाध्याय

मध्यप्रदेश के निमाड़ जनपद की तासीर एकदम नीम जैसी है, यहाँ जैसे जैसे धूप पड़ती है, गर्मी बढ़ती है, नीम की पत्तियाँ लहलहकर शीतलता बिखेरती हैं, निमाड़ में एक ऐसे ही नीम थे 'पं रामनारायण उपाध्याय–रामा दादा, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व की घनी छाँव ने न केवल निमाड़ वरन देश के सम्पूर्ण साहित्य को अपनी शीतलता प्रदान की।

वर्ष 1974 नवम्बर दिसम्बर की बात है, मै ग्यारहवीं कक्षा में था, उस समय ग्यारहवीं में ही हायर सेकंडरी बोर्ड की परीक्षा होती थी। बोर्ड के फार्म भरने थे, गवर्नमेंट मल्टीपर्पज स्कूल के सीढ़ीनुमा हाल में फार्म भरवाए गए। पिता के स्थान पर 'रामनारायण उपाध्याय' भर दिया।

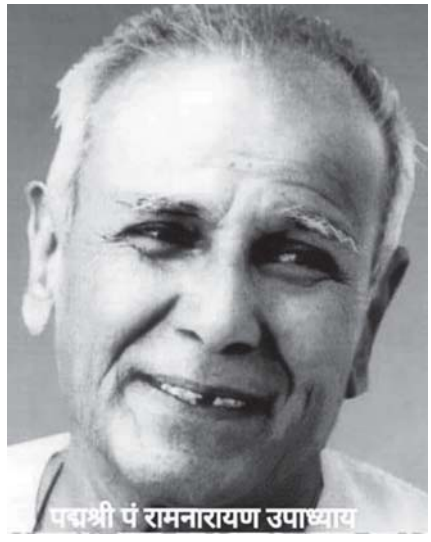

पद्मश्री पं रामनारायण उपाध्याय

दूसरे दिन कक्षा शिक्षक चिल्लाए, कक्षा में खड़ा करवा कर बोले, ये हैं मूर्ख शिशिर उपाध्याय ,बाप का नाम भी नहीं मालूम, पूरी कक्षा हँस दी, बड़ा लज्जित हुआ, हालाँकि बड़े भाई ललितनारायण उपाध्याय जो उसी स्कूल में शिक्षक थे, उन्होंने सुधरवा कर 'शिवनारायण उपाध्याय' करवा दिया था। ये घटना उस संयुक्त परिवार की है जिसमें हमें पता ही नहीं चला कि हमारे पिता कौन है, हमने आजीवन आ. दादा को पिता से बढ़ कर और बड़ी बाई को माता से बढ़ कर माना। परिवार में कभी किसी को लगा ही नहीं के ये हमारे पिता के बड़े भाई हैं। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि पण्डित रामनारायण जी की कोई संतान नहीं थी, इसका कारण ये रहा कि हम चार भाइयों और पाँच बहनों ने किसी को ऐसा महसूस होने ही नहीं दिया, और ना ही हमारे बाई बाबूजी ने कभी हमे जताया। ऐसा नहीं कि कोई संतान हुई नहीं, उन्हें दो संताने हुईं जो कि शैशव काल में ही काल कवलित हो गई। आ. दादा साक्षात सन्त व्यक्ति थे और हमारी बड़ी बाई भी उतनी ही मयालू –दयालू थी। बरसों पहले जब गाँव कालमुखी मे बँटवारा हुआ तो आ रामा दादा ने अपने छोटे भाई शिवा के साथ रहना पसन्द किया। हमारे आजा दादा पं सिद्धनाथ मुकुन्दराम उस समय मालगुज़ार थे। अत: उनके खण्डवा में भी दो तीन मकान थे। समय के साथ सभी को पढ़ने के लिए खण्डवा आना पड़ा। खण्डवा में आ. दादा और बड़ी बाई रहते थे और बाई, बाबूजी गाँव में।

जब मैं चौथी में गया था तब मुझे भी जबरजस्ती खण्डवा भेज दिया गया, मेरी इच्छानुसार मेन हिन्दी स्कूल खड़कपुरा में नाम दर्ज करवाया गया।

खण्डवा घर का सम्पूर्ण वातावरण साहित्यिक और राजनैतिक था, बड़े –बड़े नेता साहित्यकार पत्रकार घर आते जाते रहते थे। दादा के साथ बुधवारा जलेबी खाने जाते समय कर्मवीर प्रेस गली में अक्सर एक गोरे –गोरे कपसिले हँसमुख वृद्ध के यहाँ रुकना होता था,, खूब गप्पें चलती थी, हमें तनाव होता था कि जलेबी का पाया खत्म न हो जाए। बहुत धोती खेंचने पर दादा बमुश्किल वहाँ से उठते थे,वह वयोवृद्ध व्यक्ति भी हमें प्यार से थपकी देता था, बाद में पता चला कि यह व्यक्ति 'एक भारतीय आत्मा पं माखनलाल चतुर्वेदी थे। आज भी मैं अपने गालों पर उनका प्रेमिल स्पर्श महसूस करता हूँ।

गाँव के लोक–सांस्कृतिक सांचे से खण्डवा के साहित्यिक परिवेश में ढ़लने में थोड़ा समय लगा, किन्तु रामादादा भी पक्के कुम्भकार थे मुझ जैसे घड़े को घड़ने में कुछ कोर कसर नहीं छोड़ी, अन्दर बाहर खूब पजाया।

दादा के साथ साये की तरह रहने लगा तो कवि सम्मेलन भी खूब सुने, तुक बंदी सीख ली, कह लें तो दस वर्ष की उम्र में चौथी

कक्षा में ही पहली कविता लिखी,,

'दिन की बाट'
नीचे सोयें, चूहे काटें,
जब सोयें पर खाट
रात भर खटमल काटे
हम देखें दिन की बाट
बाहर सोयें मच्छर काटे
कितनी दुर्गम है ये रात
हम देखें दिन की बाट।

जब यह कविता दादा को बताई की कविता अपने आप मे पूर्ण है किंतु जब तक तुम पढ़ लिख कर अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते तब तक जीवन की कविता सम्पूर्ण नहीं होगी। दादा जानते थे कि श्रमजीवी साहित्यकारों की तब क्या हालत थी, बात वास्तविकता से जुड़ी थी अत: मैं ने अपने कविता के बीज को मन के एक कोने में संभाल कर रख दिया।

बरसों तक वो बीज मन के उस सुप्त कोने में दबा रहा और जब उसे उचित नमी मिली तो फूट कर लहलहाने लगा। वर्ष 1986 में मेरी पहली रचना 'घर' सुप्रसिद्ध 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के महादेवी वर्मा श्रद्धांजलि विशेषांक के प्रवेश स्तम्भ में प्रकाशित हुई। और आ. दादा के प्रयास से ही 1987 में पहली काव्य पुस्तक 'तुम्हारे लिये' प्रकाशित हुई।

आज 20 मई 2023 को आ. दादा की 105 वीं जन्म जयंती पर उनकी यादों का गुलदस्ता आप सबको भेंट कर रहा हूँ।

मो. 9926021858

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

आलेख

झारा जनजाति : ढोकरा शिल्प के महानायक

सनत

छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायगढ़ जिले में बसे झारा जनजाति के लोग ढोकरा शिल्प के महानायक कहे जाते हैं। उनकी बनायी बेलमेटल कलाकृतियाँ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान रखती हैं। बिल्कुल देसी पद्धति से मोम क्षय विधि से निर्मित उन कलाकृतियों की सुन्दरता अद्वितीय होती है। काँस्य-पीतल धातुओं की यह चमक देखने वालों को आश्चर्य में डाल देती है। यह प्राचीनतम कला प्रागैतिहासिक सिन्धु घाटी सभ्यता, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो कालखण्ड की झलक का स्मरण कराती है। उसी परम्परा में झारा शिल्पियों की कला और कारीगरी में पूर्ण मौलिकता और जीवन्तता का आभास होता है।

रायगढ़ का शिल्पग्राम एकताल :

जिला मुख्यालय रायगढ़ से पूर्व दिशा में मेडिकल कॉलेज के आगे गजमार पहाड़ी के निकट है शिल्पग्राम एकताल। मात्र 15 किलोमीटर के फासले पर बसा यह शिल्पग्राम पुसौर विकासखण्ड के अन्तर्गत आता है। ओड़िशा सीमा को छूता एकताल की जनसंख्या 3000 के भीतर है। यहाँ झारा जनजाति के लगभग 200 परिवार निवास करते हैं। जिनमें से लगभग 50-60 परिवार आज भी शिद्दत से शिल्प गढ़ने के अपने पुश्तैनी कार्य को छोड़े नहीं हैं, बल्कि उसे अबाध गति से करते चले आ रहे हैं। शेष अन्य मेहनत-मजदूरी के कार्यों में संलग्न हैं। ये विभिन्न लौह, काँस्य और पीतल आदि मिश्र धातुओं से झारा, चटवा-डुआ, चाकू, चिमटा, पौंसूल, काँची, खेल-खिलौना, पोरा बैला, लक्ष्मी, देवी-देवता, हाथी, घण्टी, घुँघरू, करार, जागर दीआ और बरतनों आदि का निर्माण करते हैं। उन्हें बेचते हैं और अपनी जीविका चलाते हैं।

झारा जनजाति की संस्कृति :

झारा, गोण्ड जनजाति समुदाय की उपजाति है। उनके पूर्वज झारखण्ड और ओड़िशा प्रदेश से आये बताये जाते हैं। क्योंकि उनकी बोली कुछ ओड़िया मिश्रित सादरी है। लेकिन छत्तीसगढ़ में वर्षों से निवासरत होने के कारण उन्हें लरिया-छत्तीसगढ़ी बोलना भली प्रकार से आता है। झारा समुदाय की महिलाएँ शरीर पर गोदना गुदवाती हैं। उनकी संस्कृति, पूजा-पाठ, पर्व और रहन-सहन में भी किंचित भिन्नता है। छत्तीसगढ़ के लरिया अंचल में उनकी बसाहट सर्वाधिक है। मुख्यत: रायगढ़ के ग्राम एकताल के साथ-साथ सारंगढ़ के ग्राम बैगिनडीह, जशपुर, महासमुन्द, सुन्दरगढ़ और सम्बलपुर के कुछ ग्रामों तक भी उनकी पहुँच है। इस झारा जनजाति के कुछ शिल्पकार घूमन्तू भी होते हैं। वे काँवर में सामान लेकर घूम-

झारा शिल्पियों का ढोकरा शिल्प

घूमकर आसपास के इलाकों में अपना व्यवसाय करते हैं। फिर उनका डेरा उसल जाता है।

कुछ विख्यात झारा शिल्पी :

जिस प्रकार बस्तर में घड़वा शिल्पकला का प्रचलन है। उसी प्रकार रायगढ़ जिले में ढोकरा शिल्पकला का। सन् 1980 में झारा शिल्प की प्रशासनिक पूछ-परख बढ़ी और मान्यता दी गयी। झारा शिल्पकला को नये स्ट्रक्चर नयी संरचना देने वाले थे गोविन्द झारा। वे इसके प्रथम पुरोधा ही माने जाते हैं। जब उन्हें 32 वर्ष की अवस्था में राष्ट्रपति अवार्ड और राज्य शिखर सम्मान मिला। तब उन्हीं को प्रथम बहुमुखी प्रतिभावान झारा शिल्पकार घोषित किया गया। उनके द्वारा निर्मित 'मानव वृक्ष' और अन्य विशिष्ट ढोकरा शिल्प आज भी

भोपाल, मध्यप्रदेश के मानव संग्रहालय और अन्य शहरों के संग्रहालयों में दर्शनीय हैं। झारा शिल्पकला को देश-विदेश में चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में गोविन्द झारा का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

दूसरे क्रम में आते हैं शंकरलाल झारा। उन्हें धातुओं की असाधारण कुर्सी-खटोला और सिंहासन बनाने में महारत हासिल है। 'पंखों वाले घोड़े' शिल्प पर इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

तीसरे क्रम में आती हैं बुधियारिन देवी झारा। 8 राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त बुधियारिन देवी एक अनोखी ढोकरा शिल्पकारा हैं। उनकी 'चन्द्री माता का रथ' शिल्प के प्रदर्शन के लिये हस्तशिल्प विकास बोर्ड द्वारा उक्त राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

इसी प्रकार धनीराम झारा, रामलाल झारा, विजय झारा, चाईबाई और पद्मा झारा को भी उनके भव्य शिल्पों के लिये विशिष्ट सम्मान दिये गये हैं। इन झारा शिल्पकारों ने अपनी ढोकरा शिल्पकला का प्रदर्शन जयपुर राजस्थान, सूरजकुण्ड हरियाणा, शिमला, बंगलौर सहित अन्यान्य स्थानों के क्राफ्ट मेलों में कर चुके हैं और आन द स्पाट बनाकर दिखाये भी हैं।

झारा शिल्पों में प्रागैतिहासिक शैली की विशेष छाप :

विश्व की जितनी भी शिल्पकलाएँ हैं वे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती आती हैं। झारा शिल्पकारों की शैलियाँ भी प्रागैतिहासिक कालीन सिन्धु घाटी की सभ्यता, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त मिट्टी की मूर्तियों और चित्रों से मेल खाती हैं। मीडिया में अक्सर इस बात पर चर्चा भी की जाती है कि क्या इन प्राचीन झारा जनजातियों के पूर्वजों के तार उस युग की आदिम सभ्यता से भी जुड़े थे ? दूसरी बात, शिल्पग्राम एकताल के ठीक उस पार एक 'कबरा पहाड़' पुरातत्व स्थल भी है, जहाँ पचास हजार वर्ष पहले की अनेक राक पेन्टिंग गैरिक रंगों में चित्रित हैं। उस शैलचित्र स्थल का अध्ययन करने विदेशी पुरातत्वविद भी आते रहते हैं। उन शैलचित्रों की शैली भी झारा शिल्पकारों की शैली से बिल्कुल मिलती-जुलती है। भारत के अन्य स्थानों के साथ-साथ भोपाल की भीमबेटका गुफा, सिंघनपुर गुफा, ओंगना और उषाकोठी शैलाश्रयों में मिले पुरातात्विक महत्त्व के पाषाण युगीन शैलचित्र भी उनके शिल्प की शैली से मैच खाते हैं। यह महज एक संयोग है अथवा उस काल की शिल्पकला धरोहर होने का प्रमाण ? उस आदिमयुगीन समुदाय के लोग जो पूरी दुनिया में घूम-घूमकर प्राय: एक ही प्रकार की शैलचित्रकारी किया करते थे ? इस तथ्य पर हमारे इतिहासविद और मानवशास्त्री ही उचित ढंग से प्रकाश डाल सकते हैं।

गोविन्द झारा

अल्पसंख्यक झारा जनजाति को संरक्षण की आवश्यकता :

छत्तीसगढ़ में झारा जनजाति बहुत ही अल्पसंख्यक मानी जाती है। उनके समुदाय का विस्तार अन्य गाँवों-शहरों में नहीं है। वे जिन स्थानों में रहते हैं वहीं तक सीमित हैं। बहुत अधिक निर्धनता के चलते उनके कुनबों में उतनी रफ्तार से शैक्षिक उन्नति नहीं देखी जाती। उनमें आर्थिक सम्पन्नता का अभाव हमेशा देखने को मिलता है। झारा समुदाय द्वारा किये जाने वाले ढोकरा शिल्प गढ़ने का पुश्तैनी कार्य बहुत पेचीदा और बारीकी वाला है। उसमें शारीरिक श्रम और धैर्य रखना पड़ता है। उपयोग में ली जाने वाली धातुएँ और मोम भी बहुत महँगे मिलते हैं। कच्ची सामग्रियों की लागत और फिनिशिंग के हिसाब से शिल्प के दाम नहीं मिल पाते। ग्राहक भी बहुत सस्ता माँगते हैं। नि:सन्देह झारा शिल्प का देश-विदेश में विशिष्ट ख्याति और महत्त्व है। इसलिये इस जनजाति को सामाजिक और प्रशासनिक संरक्षण मिलना चाहिये।

शिल्प संरचना में झारा महिलाओं की सर्वाधिक भागीदारी :

छत्तीसगढ़ के विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के बहुत से घरों में ढोकरा शिल्प की मूर्तियाँ और सामान आज भी मिलते हैं। इधर साहित्यिक और सांस्कृतिक समारोहों में पुरस्कार-सम्मान प्रदान करने के लिये पदक-मोमेन्टो के रूप में झारा शिल्प का बहुतायत में उपयोग किया जाता है। झारा शिल्पकारों से मनपसन्द धातु के मोमेन्टो आर्डर देकर तैयार कराये जाते हैं। झारा शिल्पियों में कुशलता इतनी अधिक होती है कि शिल्प गढ़ने के उद्यम को दूसरे लोग कर नहीं सकते।

मोम से डिजाइनिंग तैयार करना, स्ट्रक्चर को मिट्टी का लेप देकर सुखाना और उन पीतल आदि धातुओं को आग से गलाकर ढालना। फिर अन्तिम प्रक्रिया में टचिंग और फिनिशिंग का कार्य करना होता है। शिल्प गढ़ने में झारा समुदाय की महिलाएँ सर्वाधिक रुचि लेती हैं, भागीदारी करती हैं और अग्रणी भी रहती हैं।

झारा शिल्पियों का ढोकरा शिल्प।

ढलाई के पश्चात् बफिंग-सफाई के दौरान के कुछ ढोकरा शिल्प।

बफिंग के तत्काल बाद ठण्डा होते ढोकरा शिल्प।

सामाजिक- प्रशासनिक संरक्षण, प्रोत्साहन :

जनजातियों की कोई भी कला बिना सामाजिक-प्रशासनिक संरक्षण, प्रोत्साहन, प्रचार-प्रसार, प्राथमिकता और उपयोगिता के परवान नहीं चढ़ती। चुस्त प्रबंधन न हो तो किसी भी जनजाति की श्रेष्ठ कलाएँ दम तोड़ने लगती हैं। वे शीघ्र ही हाशिये पर आ जाती हैं। शिल्पकार भी गुमनामी के अँधेरों में खो जाते हैं। आखिर कलाकारों की भी तो निजी आवश्यकताएँ होती हैं। जनचर्चा के अनुसार जिला पंचायत रायगढ़ की पहल पर शिल्पग्राम एकताल की झारा शिल्पी महिलाओं के 12 समूह बनाये गये। प्रत्येक समूह में 10-12 महिलाएँ ली गयीं। रायगढ़ शहर के हृदयस्थल पर विगत वर्षों में छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा 'झारा शिल्प एम्पोरियम' भी संचालित किया गया था। कुछ वर्ष पहले शिल्पग्राम एकताल में झारा शिल्पियों के विकास के लिये वर्क शेड का भी निर्माण किया गया था। झारा शिल्प के उत्थान के लिये आनलाइन बिक्री सहित कई योजनाएँ तो बनती हैं, लेकिन अधिकाँशत: किसी न किसी पेंच में फँस जाती हैं। जबकि झारा शिल्पियों पर पुस्तकें आनी चाहियें और दूरदर्शन में वृत्तचित्र भी दिखाया जाना चाहिये।

विविध शिल्प अपने लोकांचल की परम्परा, सभ्यता, संस्कृति और वैचारिक अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक धातुशिल्पों में लोक जीवन, प्रथाएँ, रीतियाँ और नीतियाँ प्रमुखता से स्थान पाती हैं।

छत्तीसगढ़ में धातुशिल्प प्राचीन काल से प्रचलन में है। मिश्र धातुओं के ये शिल्प बहुत करीने से गढ़े हुए सुन्दर और टिकाऊ होते हैं। रायगढ़, सरगुजा और बस्तर की ग्रामीण जनजातियाँ क्रमश: झारा, माडिया लोहार और मलार इस कार्य में विशेष रुचि रखते हैं। उसे एक पुश्तैनी कार्य ही मानकर करते हैं। उन शिल्पियों का बाना-चोला भी अलग होता है और अपने पेशे में बड़े दक्ष होते हैं।

विदित हो कि झारा जनजाति के लोग एक घुमक्कड़ किस्म के व्यवसायी शिल्पी हैं। किसी भी उचित स्थान पर पड़ाव डाल लेते हैं। लोगों की फरमाइश पर भी शिल्पों की ढलाई को मूर्त रूप देते हैं। इससे इतर कुछ शिल्पी एक स्थान पर स्थिर रहकर स्थायी रूप से अपने विशिष्ट शिल्पों के निर्माण में तल्लीन रहते हैं और सुघड़ आकार देते रहते हैं। एकताल के शिल्पग्राम विभूषित होने से यहाँ के शिल्पकार अधिकतर घर पर रहकर अपने व्यवसाय को अंजाम देने में लगे हैं।

फिलहाल झारा अल्पसंख्यक जनजाति और रायपुर छत्तीसगढ़ के पुरखौती मुक्तांगन में सुशोभित उनका जनजातीय शिल्प सबकी धरोहर है। रायगढ़ जिला सहित सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ प्रदेश उनसे गौरवान्वित महसूस करता है। उन्हें संरक्षण प्रदान करने की महती आवश्यकता है।

लेखक- (छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग से सम्मानित)
'ऋतु साहित्य निकेतन', जूट मिल थाना के पीछे बगल गली, हनुमान मंदिर के पास, रायगढ़ (छत्तीसगढ़)- 496001
संपर्क: 7067643452

■

आचार्य शंकर प्रकटोत्सव

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास का प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता व्यास द्वारा वैशाख शुक्ल पंचमी मंगलवार 25 अप्रैल 2023-सायं को कुशाभाउ ठाकरे सभागार मिन्टों हॉल, भोपाल में आचार्य शंकर प्रकटोत्सव ''एकात्म पर्व'' समारोह का प्रतिष्ठा आयोजन मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के मुख्य आतिथ्य और आचार्य महामण्डलेश्वर जूनापीठाधिश्वर पूज्य स्वामी अवधेशानन्द गिरि महाराज की अध्यक्षता में अद्वैत वेदांत दर्शन के अजस्र सनातन प्रवाह को गति एवं उँचाई देने हेतु संन्यास परम्परा एवं अकादमिक जगत का सम्मान कार्यक्रम में स्वामिनी विमालानंद सरस्वती, प्रमुख चिन्मय मिशन कोयम्बटूर और डॉ. काशीराम, पूर्व प्राध्यापक हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय को सम्मानित किया गया। साथ ही अद्वैत जागरण शिविरों के प्रतिभागियों का दीक्षांत समारोह जिसमें लगभग 100 प्रतिभागियों को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर आचार्य शंकर की 108 फीट उँची बहुधातु प्रतिमा शंकर संग्रहालय तथा आचार्य शंकर अन्तरराष्ट्रीय अद्वैत वेदांत संस्थान की स्थापना की प्रर्दशनी लघुफिल्म पोस्टर तथा वेबसाइट का लोकार्पण भी सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर युग पुरूष स्वामी परमानंद गिरिजी महाराज भी उपस्थित थे।

प्रमुख सचिव संस्कृतिक श्री शिवशेखर शुक्ला जी ने अपने प्रारंभिक उद्बोधन में ओंकारेश्वर में आचार्य शंकर अद्वैत वेदांत पर आधारित निर्माणाधीन 'एकात्म धाम' के बारे में तथा उसकी प्रगति के बारे में अपने विचार व्यक्त किये।

पूज्य स्वामिनी विमलानंद सरस्वती, प्रमुख चिन्मय मिशन कोयम्बटूर ने अपने सारस्वत उद्बोधन में कहाकि हमारे यहाँ धर्म की स्थापना शास्त्र से जुड़ी है। आदि शंकराचार्य युग पुरुष है। मंदिरों में सभी भगवानों की मुर्तियाँ लगती है। उसमें हम भगवान को देखते हैं। अद्वैत मत वाद नहीं है वह परम तत्व है। वाद में विवाद हो सकता है। वेद नही होते तो तत्व ज्ञान कैसे मिलता। अद्वैत याने शंकराचार्य माया जो है ही नहीं शंकरचार्य जी ने मठ स्थापित किये है हमारी परंपरा उन्हीं से आई है। यह उनका उपकार है। आचार्य शंकराचार्य भक्त, योगी, कर्मकाण्डी, सिद्धपुरुष भी थे। अद्वैत ज्ञान

स्कूलों में भी दिया जा सकता है। हमारे शरीर में अलग-अलग अंग है पर मैं हूँ यह अद्वैत है, आपकी मेरी आत्मा एक ही है अलग नहीं है। **डॉ. काशीराम, पूर्व प्राध्यापक, हंसराज कालेज दिल्ली विश्व-विद्यालय** ने अपने उद्बोधन में कहा कि यह प्रकल्प पूरे विश्व में फैलेगा जो आने वाले समय में अद्वैत फिलॉसफी की चर्चा होगी। इसे ही सबको स्वीकार करना होगा व्यक्ति भले ही अलग है, लेकिन चेतना एक ही है। जिसे एकात्मक भाव हो गया वही जाग्रत हो गया। मुझमें दूसरे में अंतर की भिन्नता जिस दिन सत्य हो गई उस दिन सारा समाज एक हो जाएगा। 'एकात्म धाम' में शंकराचार्य के भाष्यों तथा प्रस्थान त्रयी पढ़ायी जाये। उसे उसे पढ़ाने के लिए मैं अपने आपको समर्पित करता हूँ।

युग पुरुष स्वामी परमानंद गिरि महाराज महामण्डलेश्वर एवं संस्थापक अखंड परमधाम ने तथा महामण्डलेश्वर अवधेशा नन्दगिरि जी ने कहा कि प्रदेश में ''एकात्म धाम'' की स्थापना कर मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान जी ने जो कार्य किया है। वह कार्य संतो को करना था। सही मायनों में यह पुण्य कार्य है। उन्होंने कहा की जगत गुरु शंकराचार्य के सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने में जीवन की सार्थकता है। ज्ञान, विद्या को जानने वाला धन्य हो जाता है। राष्ट्र निर्माण के लिये भारतीय संस्कृति जरूरी है। नशे से दूर रहे।

आज साधु भी ठीक बना रहे बडा मुश्किल है सुख-दुख के पार जाना है जो काम हमे करना चाहिए वह कार्य शिवराज जी कर रहे हैं। मिट्टी से बना बर्तन वह थोड़ी देर तक ही रहता है पर जो हमेशा रहती है वह मिट्टी ही है जो परम तत्व है यही सत्य है। भगवान शकंराचार्य के सिद्धांतों को आगे बढ़ायें अद्वैत के सिद्धांत के प्रचार का काम म.प्र. की धरती से शुरू हो गया है आने वाले समय में इसे और बल मिलेगा। सर्व समाज को भी इस दिशा में आगे आना चाहिए हमें विदेशी नकल की सूझ रही है जबकि आचार्य शंकर ने जो सिद्धांत दिए वे अमूल्य हैं।

मुख्यमंत्री शिवाराज सिंह चौहान: हम आदि शंकराचार्य के ऋणी हैं श्री राम ने उत्तर से दक्षिण को जोड़ा और कृष्ण ने पूरब से पश्चिम को जोड़ा पर आचार्य शकंराचार्य ने पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं को जोड़ा और चारों दिशाओं में मठ स्थापित कर भारत को जोड़ने का कार्य किया। उनके कारण हमारी संस्कृति की पहचान बनी हुई है। उनका अद्वैत दर्शन ही लोगों को सही दिशा दे रहा है।

अद्वैत दर्शन और भारतीय संस्कृति ही विश्व को सही दिशा दे सकती हैं। उनके संदेश को जन-जन तक पहुँचाना सरकार का कार्य है इस कार्य में सरकार साधु-संतों के साथ हैं। अब समय आ गया है कि साधु-संत आश्रम से बहार निकले। संतो की उपस्थिति ही सुविचारों का प्रसार करेगी और तभी भारत विश्व गुरु बनेगा। मुख्यमंत्री ने कहा कि संतों के साथ ही वेद मंत्र और उपनिषदों की वाणी से आज कुशाभाऊ ठाकरे सभागार गुरुकुल बन गया हैं। हमारे वेद और उपनिषदों को पढ़ने से एक ही बात ध्यान में आती है। हम सभी में ऋषि-मुनियों ने ''वासुदेव कुटुम्बकम'' का संदेश दिया। जियो और जीने दो का संदेश भारत ने ही दिया है। यह गर्व की बात है कि म.प्र. की धरा में शंकराचार्य जैसे गुरु मिले ओंकारेश्वर में ''एकात्म धाम'' बन रहा है यहाँ से सारे विश्व को एकात्मकता का संदेश मिलेगा। उन्होंनें कहा कि भौतिकता की अग्नि में दग्ध विश्व मानवता को शाश्वत शांति के पथ का दिग्दर्शन अपने अद्वैत दर्शन के जरिए भारत ही कराएगा विश्व जिन विवादों से घिरा है, उनका हल भारत के पास है। हमारा दर्शन शांति और विश्व कल्याण का है। अद्वैत दर्शन कहता है कि प्रत्येक जड़ और चेतन में एक ही चेतना है। हर आत्मा में परमात्मा है। भारत के दर्शन की गहराईयों में जाएं तो विश्व के सारे विवादों का हल भारत के पास है। सबके कल्याण में ही सारे विवदों का हल है। विश्व की सारी विचार धारायें इसी चिंतन से निकली है कि सुखी कैसे रहा जाए। पश्चिम दर्शन कहता है कि शरीर की आवश्यकता है जो पूरी हो जाए तो सुखी हो जाएगा। हमारा दर्शन कहता है कि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के समुच्चय का सुख चार पुरूषार्थ, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से प्राप्त होता है। शंकराचार्य और विवेकानंद जैसे विद्वानों ने हमारा दिग्दर्शन किया है। मुख्यमंत्री ने कहा कि आचार्य शंकराचार्य महाराज नहीं होते तो ये भारत नहीं होता। कई बेटे-बेटियाँ अद्वैत-वेदांत की शिक्षा ले रहें हैं। ये शंकर के दूत हैं। ऐसे बेटे-बेटियाँ अद्वैत-वेदांत की शिक्षा का संदेश गाँव-गाँव शंकर दूत बनकर अद्वैत वेदांत की अलख जगायेंगे। धर्म की जय हो अधर्म का नाश हो। सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे संतु निरामय:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग्भवेत।। उस लक्ष्य को पाने के लिए हम कोई न कोई गिलहरी उपक्रम जरूर करें।

महामंडलेश्वर जूनापीठाधीश्वर पूज्य स्वामी अवधेशानन्द गिरि जी महाराज ने कहा कि आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास ईश्वरीय प्रकल्प है। ओंकारेश्वर में बन रहा एकात्म धाम ज्ञानतीर्थ के रूप में विश्व को दिशा दिखाएगा। संसार में आत्म तत्व ही जानने योग्य है सारे मत-मंतातरों का आदर भारत ने किया। आदि शंकराचार्य 32 वर्ष की आयु में भारत का तीन बार भ्रमण कर चुके थे। भारत में साढे बारह लाख सन्यासी तैयार करने में मेरा योगदान रहा है। सन्यासियों से भारत विश्व को अद्वैत वेदांत के दर्शन कराएगा। सुपर कम्प्युटर की आधुनिक तकनीक भी वेदांत दर्शन के आगे कुछ नहीं है। वही उन्होंने कहा कि शांति का अर्थ है निर्भय वातावरण। ''सन्यास का अर्थ है कि न मुझे आपसे डर है और न ही आपको मुझसे'' आज पश्चिम में कुछ अंशो में ही सही लेकिन वहा के लोगो पर विवेकानंद का प्रभाव दिख रहा है। गुरु और शिष्य एक ही सत्ता है। यह अध्यात्मक धर्म धरा है नव दीक्षित भारत की संस्कृति, संस्कार का प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पण करने बैठी युवा

पीढ़ी के युवक, तरूण युवतियाँ चारों वेदों का ब्रह्म वाक्य यही हैं ''अहं ब्रह्मस्मि'' जानने वाला है वह आत्म तत्व है। संयास के मूल में नारायण है। ''मैं ऐसा सन्यासी बनू न मैं किसी से लडू न मूझसे कोई लडे'', ''मैं प्रत्येक अवस्था का परिवर्तन का साक्षी हूँ। बचपन, जवानी, बुढापा, ब्रह्म'' सौन्दर्य लहरी शिव और शक्ति से मुक्त है विद्या वही है जो मुक्ति देती है आचार्यों में कोई भेद नही हैं सभी अवतारों को एक ही गिना है। बुद्ध, स्वामी विवेकानंद आनंद स्वरूप है। सच्चिदानंद है। इधर-उधर सब दूर वही ईश्वर है। उन्होंने कृतज्ञता ज्ञापित करतें हुए कहा इस 'एकात्म धाम' से पीढ़ियाँ लाभान्वित होगी और याद रखेगी। आप पुण्य आत्मा है! हम सब मिलकर यह कार्य करेंगे। इसका संदेश पूरे संसार में जायेगा। हम विचार को पवित्रता के साथ लेकर चलेंगे। यह एकात्म धाम ओंमकारेश्वर में विश्व का ज्ञान पीठ होगा, गुरु तीर्थ बनेगा, विचार का तीर्थ बनेगा मानवता के लिये हरि ओम।

अद्वैत जागरण शिविर में प्रतिभागियों के कथनः डॉ. अर्पण याग्निक- अहमदाबाद में 10 दिन के अद्वैत जागरण शिविर में भाग लिया इससे जीवन जीने और समझने का नजरिया ही बदल गया 'क्रिएटिविटी से अध्यात्म की ओर जाने और दोनों को मिलाने की राह शिविर के माध्यम से खुली है। सबको समान मानना ही एकात्मक है। इसके माध्यम से मैंने राग और द्वेष के बारे में जाना। मेरा कार्य क्षेत्र भी इसी से जुड़ा है। विज्ञापन बनना एक राग है, इसे कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है, इस शिविर के माध्यम से जान पाया हूँ तत्व बोध का ज्ञान होने से बेहतर गुरु बनने में आसानी होगी भारत को क्रिएटिव नेशन में नबंर एक पर लाने में सहयोग करूगा। ऐसा मेरा मंतव्य हैं।

स्नेह लाहोतीः मै बचपन से ही अध्यात्म से बहुत प्रभावित रही हूँ स्वामी विवेकानंद और ओशो को मैंने बहुत पढ़ा था। सुबह योग और ध्यान वर्षो से कर रही हूँ। घर में अध्यात्मिक वातावरण होने से आदि शकंराचर्य के दर्शन से प्रभावित होकर गत मार्च में हिमालय में आयोजित हुए शिविर में मैंने प्रतिभागिता की। इस शिविर के माध्यम से तत्वबोध का ज्ञान मिला। मैंने जाना कि मैं क्या हूँ और कौन हूँ? स्वयं के साथ ही इस जगत में मौजूद जीव और निर्जीव वस्तुओं के नये तरीके से पहचानने का मौका मिला वेदांत मात्र साधु-संतों के लिए नहीं है अपितु सभी के लिए है।

ओंकारेश्वर में 15 अगस्त 2023 के पूर्व स्थापित होगी आदिगुरु शंकराचार्य की 108 फीट ऊँची प्रतिमाः- मुख्यमंत्री

ओंकारेश्वर में ''एकात्म धाम'' आकार ले रहा है यहाँ से

सारे विश्व को एकात्म का संदेश मिलेगा। ओंकारेश्वर आचार्य शंकर की दीक्षा भूमि है। यहाँ आगामी 15 अगस्त के पूर्व शंकराचार्य की 108 फिट की विशाल प्रतिमा ''स्टैच्यू ऑफ वननेस'' स्थापित होगी इसका कार्य गति से आकार ले रहा है।

अंलकाण समारोहः

अद्वैत वेदांत दर्शन के अजस्र सनातन प्रवाह को गति एवं ऊँचाई देने हेतु सन्यास परंपरा एवं अकादमिक जगत का सम्मान समारोह में चिन्मया मिशन कोयम्बटूर की प्रमुख स्वामिनी विलानंद सरस्वती और हंसराज कालेज, दिल्ली विश्व विद्याालय के पूर्व प्राध्यापक डॉ. काशीराम को एकात्म पर्व समारोह में शाल, प्रशस्ति पत्र व श्री फल देकर सम्मानित किया गया।

दीक्षांत समारोह 2023ः

अद्वैत जागरण शिविर में हिस्सा लेने वाले लगभग 100 शिविरार्थियों को शंकर दूतों के रूप में माला पहनाकर भगवत गीता और प्रणाम पत्र सहित आचार्य शंकर का चित्र दीक्षांत समारोह में मुख्यमंत्री, स्वामी अवधेशानंद गिरि और स्वामी परमानंद जी द्वारा सभी शिविरार्थियों को प्रदान किया। समारोह में लघुफिल्मों में अद्वैत वेदांत, जागरण शिविरों पर केन्द्रित का प्रर्दशन भी हुआ साथ ही आदिशंकराचार्य के 'एकात्म धाम' की प्रर्दशनी तथा पोस्टर सहित WWW.oneness.org.in वेबसाइड का लोकार्पण सम्पन्न हुआ।

-रपट : कला समय ■

एकात्म पर्व छाया-वीथि

कुशाभाऊ ठाकरे सभागार (मिंटो हॉल) भोपाल में दिनांक 25 अप्रैल 2023 को हुए आचार्य शंकर प्रकटोत्सव समारोह की झलकियाँ...

एकात्म पर्व छाया-वीथि

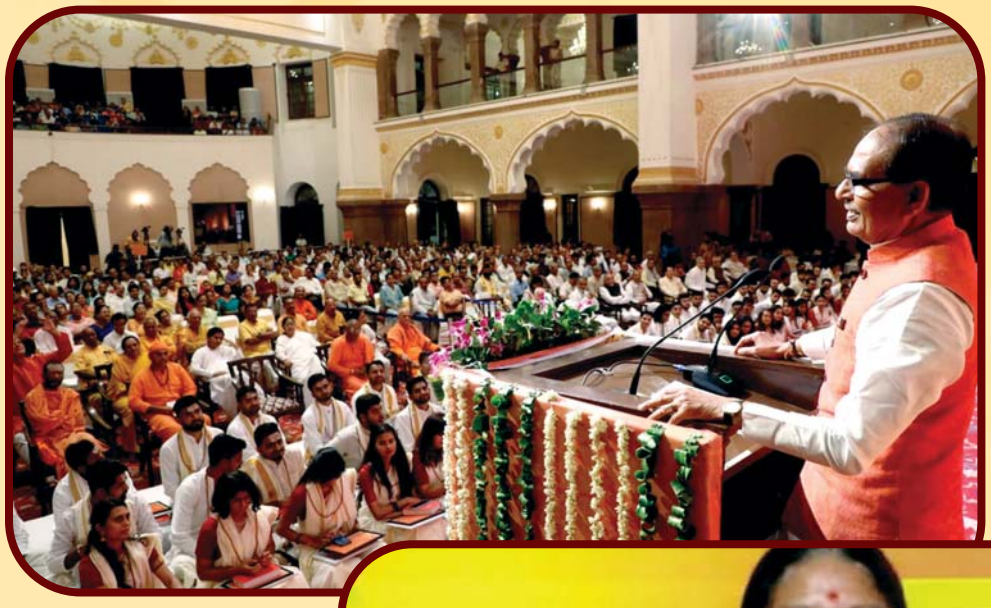

एकात्म पर्व छाया-वीथि

एकात्म पर्व छाया-वीथि

एकात्म पर्व छाया-वीथि

एकात्म पर्व छाया-वीथि

एकात्म पर्व छाया-वीथि

एकात्म पर्व छाया-वीथि

शायरी का साहिराना फ़न

अश्विनी कुमार दुबे

सिनेमा की इस अंतिम कड़ी के साथ साहिर लुधियानवी के धारावहिक की श्रृंखला में अगला धारावहिक शकील बदायूँनी पर पूर्व की भाँति पाँच धारावाहिक श्रृंखला में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर कला समय का विनम्र प्रयास है। आशा है पाठको को पसंद आयेगा।

- संपादक

साहिर फ़िल्मों में उर्दू की परंपरा से आए। मीर, ग़ालिब, दाग़ से लेकर फिराक तक उर्दू शायरी की एक उत्कृष्ट परंपरा है। सज्जाद जहीर से इधर कई तरह के बदलाव उर्दू लेखन में देखने को मिलते हैं। गद्य और शायरी दोनों में। हक़ीक़ी और रूहानी इश्क़ की बातें उर्दू शायरी में शुरू से दिखाई देती हैं। सूफियों ने इसे अभिव्यक्ति के नए आयाम दिए। शराब, सुराही और प्याला तो कितनी बार उर्दू शायरी में दिखाई दिए, नए-नए अर्थों के साथ। इसी तरह इश्क़ और महबूबा भी पुरानी उर्दू शायरी के ज़रूरी तत्त्व रहे और कुछ हद तक आज भी हैं। आज़ादी के आंदोलन की पृष्ठभूमि में सामाजिक मुद्दों की शायरी/कविता एक आधार भूमि के रूप में उभरकर सामने आती है। पूरा देश और समाज एक उथल-पुथल से गुज़र रहा था, जिसमें मय और इश्क़ की बातें या भक्तिपरक शब्दावली अप्रासंगिक हो चुकी थी। सामाजिक बदलाव, एकजुटता और संघर्ष के स्वर फ़िजांओं में गूँजने लगे थे। साहिर ऐसे समय में ही अपनी क़लम माँज रहे थे। साहिर की प्रारंभिक ग़ज़लों से लेकर फ़िल्मी गीतों तक की काव्य यात्रा पर विचार करें तो सबसे पहले उनके द्वारा चयनित विषयवस्तु पर ध्यान जाता है। युवा अवस्था में उन्हें पारंपरिक उर्दू शायरी ने आकर्षित किया होगा, परंतु उसके मोहपाश में वे तनिक भी नही बँधे। वे अपने समय को देख रहे थे। अपने जीवन की मुश्किलें और पूरे भारतीय समाज को देख रहे थे। भारतीय समाज की उथल-पुथल और तकलीफ़ें उन्हें लिखने के लिए प्रेरित कर रही थीं। अंग्रेज़ी हुकूमत की मनमानी, जिसमें भारतीय समाज के प्रति उनकी उपेक्षा और सामान्यजन के बुनियादी अधिकारों के प्रति उनकी

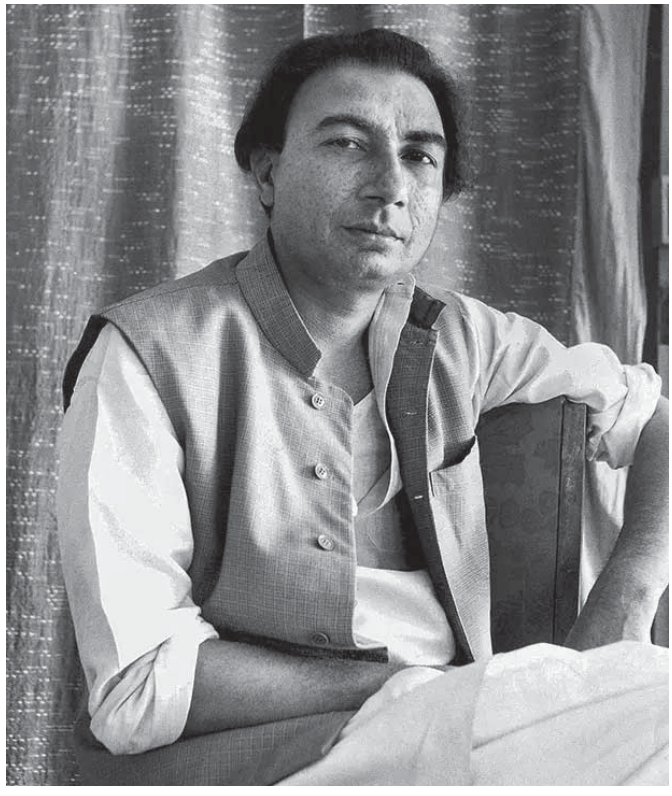

लापरवाही जिस तरह उस समय उभरकर आई, उससे विद्रोह का बबूला उठना ही था और वह ख़ूब तेज़ी से उठा, जिसे अंग्रेज़ सरकार को सँभालना मुश्किल हो गया। फिर देश का बँटवारा और आज़ादी का जश्न, ये सब मंज़र साहिर खुली आँखों से देख रहे थे और अपने अशआरों में उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे। 1946 में जहाज़ियों की बग़ावत पर उन्होंने एक नज़्म लिखी— 'ये किसका लहू है' इसमें वे लिखते हैं— 'हम ठान चुके हैं अब जी में हर ज़ालिम से

टकराएँगे।' अर्थात् वे उस समय की पूरी सामाजिक उथल-पुथल को गहराई से महसूस कर रहे थे और उसे अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे। परंतु इस सारे उपक्रम में जो ख़ास बात है, वह है उनकी अपनी नज़र। उनका दृष्टिकोण। वे स्वयं कहते हैं— 'ले दे के अपने पास फ़क़त इक नज़र तो है, क्यों देखें ज़िंदगी को किसी की नज़र से हम।'

मैं उनके कला पक्ष पर यहीं से विचार करता हूँ। वे घटनाओं के मूकदर्शक नहीं हैं। दूसरों की व्याख्याएँ वे जानते हैं। समझते हैं। परंतु उनकी मौलिक व्याख्या है। वे दूर तक देखते हैं। तात्कालिक प्रभावों के दबाव से बचते हुए। वे दूरगामी प्रभाव देख रहे हैं। वहाँ है उनकी दृष्टि। 15 अगस्त, 1947 पर लिखी हुई उनकी एक नज़्म देखिए— 'ये शाख़े-नूर जिसे जुलमतों में सींचा है, अगर फली तो शरारों के फूल लाएगी। न फल सकी तो नई फ़स्ले-गुल के आने तक, जमीरे-अर्ज में इक ज़हर छोड़ जाएगी।' और आगे देखिए— 'कुछ बातें' नज़्म में 'देस के अदबार की बातें करें, अजनबी सरकार की बातें करें। अगली दुनिया के फ़साने छोड़कर, इस जहन्नुमजार की बातें करें।' इसके तुरंत बाद 11 सितंबर, 1947 को वे आकाशवाणी दिल्ली में मुल्क के रहनुमाओं से अपील करते हैं— 'माँओं को उनके होंठों की शादाबियाँ/नन्हे बच्चों को उनकी ख़ुशी बख़्श दो/मुल्क की रूह को ज़िंदगी बख़्श दो/मुझको मेरा हुनर, मेरी लय बख़्श दो/मेरे सुर बख़्श दो, मेरी नय बख़्श दो।'

साहिर की शायरी में वतन, प्रकृति और सघन मानवतावाद ये तीन प्रमुख पक्ष हैं। हालाँकि उन्होंने वतनपरस्ती की रचनाएँ बहुत कम लिखी हैं। परंतु उन्हें अपने देश और देशवासियों की बेहतरी की चिंता है। वे कई रूपों में जगह-जगह अपने अशआरों में इसे व्यक्त करते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य उन्हें लगातार अभिभूत करता है। वे मानवीय प्रेम भावना को प्रकृति तक लाते हुए उसे विस्तार देते हैं। उनके प्रेम संसार में मनुष्य तो है ही साथ ही धरती, आकाश, चाँद-तारे, सागर, पर्वत, नदियाँ, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और बदलती हुई ऋतुएँ— पूरी प्रकृति अपने सौंदर्य और वैभव के साथ उपस्थित है। और यह शुरू से है। उनके पहले संग्रह 'तल्ख़ियाँ' से ये पंक्तियाँ देखिए— 'अँधियारी रात के आँगन में ये सुबह के क़दमों की आहट/ये भीगी-भीगी सर्द हवा, ये हलकी-हलकी धंधलाहट।'

साहिर का मानवतावाद बहुत विस्तृत है; इसमें ग़रीब, मज़दूर, किसान और स्त्री के साथ होते आ रहे अन्याय के विविध प्रसंग हैं। साहिर यहाँ शोषण और अन्याय की बातें भर नहीं करते। वे सदियों पुरानी इस स्थिति को बदलना चाहते हैं। बदलाव के स्वर, संघर्ष और एकजुटता के तराने उन्होंने प्रारंभ से ही गाने शुरू कर दिए थे। उनके पहले ही संग्रह 'तल्ख़ियाँ' में ये तेवर देखते ही बनते हैं—

आज से ऐ मजदूर किसानो! मेरे राग तुम्हारे हैं,
फ़ाक़ाकश इंसानो! मेरे जोग बिहाग तुम्हारे हैं।
जब तक तुम भूखे नंगे हो, ये शोले ख़ामोश न होंगे,
जब तक बे-आराम हो तुम, ये नग्मे राहत-कोश न होंगे।
मुझको इसका रंज नहीं है, लोग मुझे फनकार न मानें।
फ़िक्रो-सुखन के ताजिर, मेरे शेरों को अशआर न मानें।
मेरा फन, मेरी उम्मीदें, आज से तुमको अर्पण हैं,
आज से मेरे गीत तुम्हारे दुख और सुख का दर्पण हैं।'

साहिर के लिए उनका चिंतन, उनकी सोच और उससे उपजी विषय वस्तु ही उनके अशआरों में महत्त्वपूर्ण है। तब तो वे घोषणा करते हैं— 'मुझको इसका रंज नहीं है, लोग मुझे फनकार न मानें। फ़िक्रो-सुखन के ताजिर, मेरे शेरों को अशआर न मानें।'

आप कल्पना करें कि एक युवा शायर अपनी शुरुआत यहाँ से करता है। सन् 1943 में काफ़ी जद्दोजहद के पश्चात् प्रकाशित हो पाया था साहिर का पहला संकलन 'तल्ख़ियाँ'। तब साहिर की उम्र 22 वर्ष थी। कहने का तात्पर्य यह है कि 'तल्ख़ियाँ' की रचनाएँ साहिर के किशोरवय की रचनाएँ हैं। कितनी परिपक्व और परिष्कृत।

'तल्ख़ियाँ' से गुज़रते हुए यह लगता है कि साहिर उर्दू-फ़ारसी के अच्छे जानकार थे। इस संकलन में उनकी जितनी भी रचनाएँ हैं भाषा के लिहाज़ से बहुत उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। जगह-जगह उनकी नज़्मों और ग़ज़लों में उर्दू और फ़ारसी की शब्दावली दिखाई देती है, जिसकी अपेक्षा एक मँजे हुए शायर से ही की जा सकती है। उनकी भाषा और भाव का एक बेमिसाल नमूना देखिए— 'इब्लीस खंदा जन है मज़ाहिब कि लाश पर/पैगंबराने दहर की, पैगंबरी कि ख़ैर/इल्हाद कर रहा है मुरत्तब जहाने-नौ/दैरो-हरम के हीला-ए-ग़ारतगरी कि ख़ैर।'

कॉलेज के दिनों में ही साहिर मुशायरों में शिरकत करने लगे थे। एक गंभीर और तरक़्क़ीपसंद शायर के रूप में उनकी पहचान स्थापित होने लगी थी। मय, साक़ी, हुस्न, मोहब्बत जैसे बहुप्रचिलत विषयों पर जब उन दिनों ख़ूब लिखा जा रहा था। मुशायरा लूटने के लिए ऐसे शेर लगभग सभी शायर पढ़ रहे थे। तब साहिर ग़रीबी, शोषण, संघर्ष और स्त्री उत्पीड़न पर अपनी नज्में मुशायरों में सुना रहे थे। उर्दू शायरी में ख़ुद की तारीफ करने का एक फैशन रहा है। मीर, सौदा, गालिब, फ़िराक़ सबने अपनी ही तारीफ़ में कई शेर पढ़े हैं। माना कि ये सब बड़े शायर हैं परंतु ख़ुद अपना बड़प्पन बघारने में

पीछे नहीं हैं। यहाँ साहिर सूर, तुलसी और कबीर की परंपरा से प्रभावित हैं। तुलसी— 'कवित विवेक एक नहिं मोरे', सूर— 'सूर क्रूर इस लायक़ नहीं' और कबीर— 'मसि काग़ज़ु ओ नहीं, क़लम गही नहीं हाथ...' साहिर ने अपना तख़ल्लुस तक किसी ग़ज़ल या नज़्म में इस्तेमाल नहीं किया। वे तो यही कहते हैं— 'कल और आएँगे मुझसे बेहतर कहने वाले/तुमसे बेहतर सुनने वाले...।'

साहिर मुख्य रूप से नज़्म लिखने वाले शायर हैं। उन्होंने छोटी और लंबी दोनों तरह की नज़्में लिखीं। 'तल्ख़ियाँ' में उनकी कई ग़ज़लें भी संगृहीत हैं। उस समय उर्दू शायरी में प्रचलित सभी प्रकार की विधाएँ उन्होंने अपनाईं और धीरे-धीरे हिंदी गीत के क़रीब आते गए। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि वे किसे संबोधित कर रहे हैं इसलिए उसकी भाषा में ही उन्हें अपनी बात कहनी चाहिए। यही कशिश उन्हें फ़िल्मी दुनिया में खींच लाई। वैसे तो कॉलेज के दिनों से ही वे अपनी उद्देश्यपूर्ण शायरी के कारण मशहूर हो चुके थे। मुशायरों में उन्हें लोग गंभीरतापूर्वक सुन रहे थे। 'तल्ख़ियाँ' प्रकाशित होने के पश्चात् वे अदब की दुनिया में एक जाना-पहचाना नाम हो गए थे। उन दिनों वे कई उर्दू पत्रिकाओं का संपादन भी कर रहे थे। उन्हें अपनी बात जन-जन तक पहुँचानी थी और इसके लिए फ़िल्में ही ऐसा सशक्त माध्यम उन्हें प्रतीत हुईं, जहाँ से वे अपनी बात देश के आम आदमी तक पहुँचा सकते थे। हालाँकि उस समय भी फ़िल्मों में लिखना अदब वालों के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता था। बावजूद उर्दू अदब के कई नामचीन लोग फ़िल्मों में लिख रहे थे। हिंदी में ज़रूर यह रूढ़ि बहुत दिनों से बनी हुई है कि फ़िल्मों में लेखन दोयम दर्जे का है। 'साहिर' अदब की दुनिया में स्थापित शायर थे। उन्होंने अपनी शर्तों पर फ़िल्मों में लिखना कबूल किया। और फ़िल्म जगत् में उन्होंने लेखक के मान-सम्मान की सुरक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया। कई संगीतकारों और गायकों से उनके गहरे मतभेद रहे। उन्होंने आकाशवाणी में बजाए जाने वाले नग़मों में लेख़क के नाम का उल्लेख किए जाने के लिए दबाव डाला। उचित पारिश्रमिक के लिए संघर्ष किया और सफलता पाई। निःसंदेह फ़िल्मों में आकर उन्होंने गीतों की भाषा अपनाई। वे अब बहुत बड़े जनसमूह में सुने जा रहे थे इसलिए उन्होंने गीत की शैली अपनाते हुए अपनी भाषा-शैली को सरल, सहज और बोधगम्य बनाया। वे अपने विषय की प्रखरता के गायक हैं। नज़्म, ग़ज़ल और गीत, जिस शैली में भी उन्हें अपनी बात कहने में सुगमता महसूस हुई, उसमें उन्होंने अपनी बात कही। अधिकांश नज़्में, जो वे पहले लिख चुके थे, उन्हें फ़िल्मों में देने के लिए उन्होंने भाषा के स्तर पर उसमें आवश्यक सुधार किया और उन्हें यथासंभव सहज-सरल बनाया।

इस प्रकार साहिर का कला संसार बहुत व्यापक है। एक ओर इसमें उर्दू अदब की ऊँचाई है। उनकी शायरी विषय और भाषा दोनों स्तर पर अपनी पहचान स्थापित करती है। वे अदब की भाषा के जानकार हैं। कठिन से कठिन भाव जगत् में उतरकर वे अपनी अनुभूतियों को सहज अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। अपनी प्रारंभिक रचनाओं से ही उनमें भाषा का सौष्ठव, शैली का प्रभाव और कहने की नवीनता दृष्टिगत होती है। 'तल्ख़ियाँ' पढ़कर ही हर कोई उन्हें बड़ा शायर मानने के लिए विवश हो जाता है। मुख्य बात जो उनकी शायरी में है, वह यह कि पारंपरिक हुस्न, मोहब्बत और मय के विस्तारपूर्वक वर्णन से हटकर वे ज़मीन से जुड़ी हुई बातें अपनी शायरी में उठाते हैं। वहाँ देश का आम आदमी है, अपने दुखों और संघर्षों के साथ। स्त्री है, अपने स्त्रीपन की महानता के साथ। सौंदर्य, प्यार, मोहब्बत भी है उतना, जिससे ज़िंदगी ख़ूबसूरत है और ज़िंदादिल भी। दूसरी ओर उनकी शायरी में प्रकृति प्रेम है और दार्शनिक पक्ष भी। वे प्रकृति को उसकी समग्रता में देखते हैं। मानव जीवन में प्रकृति का बड़ा महत्त्व है, वह मानव जीवन का, उसके सौंदर्यबोध का एक अनिवार्य अंग है। मानव अकेला कहाँ है? प्रकृति सदा उसके साथ है। असफल प्रेम प्रसंगों के पश्चात् तो साहिर प्रकृति प्रेम में डूबते चले गए हैं। जहाँ तक उनके दार्शनिक पक्ष का सवाल है वे किसी स्थापित धर्म और मज़हब को नहीं मानते। वे मानव और उसमें समाए सद्गुणों को महत्त्व देते हैं। सारी कायनात के सद्गुणों को एकाकार रूप देते हुए वे उसे संबोधित करते हैं- 'अल्लाह तेरो नाम, ईश्वर तेरो नाम। सबको सन्मति दे भगवान...।' ऐसे कई महत्त्वपूर्ण भजन साहिर ने फ़िल्मों में लिखे हैं, जिनमें सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की मंगल कामना की गई है।

उनकी भाषा, पारंपरिक उर्दू शायरी की प्रचलित नाजुक भाषा से बिलकुल अलग-थलग है। भले ही वे प्रेम गीत लिख रहे हों या जन-जागरण के गीत। उनकी भाषा में एक तीव्रता है, प्रवाह के साथ वे बहुत कोमल शब्द इस्तेमाल नहीं करते। गीत की शुरुआत भले ही नाजुक मिज़ाजी से हो परंतु अंतरे से भाषा की रवानी बदलती दिखाई देती है। अंत तक आते-आते तो उनकी शब्दावली ठेठ लहज़ा अख़्तियार कर लेती है। साहिर परिवर्तन चाहते हैं। वे जल्द से जल्द यथास्थिति से बाहर आने के लिए आतुर हैं। यही आतुरता उनके शब्द चयन में साफ़ झलकती है। इस प्रकार उनकी भाषा में एक ख़ास त्वरा है, जो सीधे मानव के हृदय स्थल पर अपना असर छोड़े बिना नहीं

रहती। साहिर अपने अशआरों में सीधी बातें करते हैं, वहाँ ज़्यादा पेचोख़म नहीं है परंतु भाषा का सौंदर्य कहीं नष्ट नहीं होता। बात कहने में शायरी की जो कलात्मकता है, वह पूरी तरह उनके अशआरों में विद्यमान है। ग़ज़ल और नज़्मों की शैली में उन्होंने गीत का रंग भरते हुए अपने अशआरों में कमाल पैदा किया है।

फ़िल्मों में कुछ हलके-फुलके गीत भी साहिर की क़लम से निकले हैं। वैसे भी किसी महान कवि या शायर की सारी रचनाएँ उत्कृष्ट नहीं हो सकतीं। फिर इससे कौन इनकार करता है कि फ़िल्मों में परिस्थिति, पात्र और कथा के त्रिकोण को भी साधना पड़ता है। कहीं-कहीं साहिर ने बहुत साधारण पंक्तियों से काम चलाया है। हम उसे फ़िल्मों की माँग और उनकी सिचुएशन के खाते में डालते हैं।

सतत प्रवाह के साथ ही साहिर की शायरी में ज़बरदस्त प्रभाव भी है। यह उनकी भाषा, शब्द चयन और मर्मस्पर्शी शैली के कारण है। विषयवस्तु के प्रति उनकी अपनी ख़ास समझ का भी यहाँ स्पष्ट असर है। कुल मिलाकर साहिर की शायरी चाहे वो ग़ैर फ़िल्मी हो या फ़िल्मी गीतों के रूप में, वह सबको सुकून देने वाली है। उसमें भारतीय आमजनों की बातें हैं। संघर्ष है और एकजुटता का आह्वान भी। उसमें स्त्री के प्रति आदर और उसे सबला बनाने की आकांक्षा है। साथ ही मोहब्बत और हुस्नेख़याली भी है। दुख में यह शायरी सांत्वना देती है। आगे बढ़ने और संघर्ष करने को प्रेरित करती है। प्रत्येक श्रोता और पाठक को अपने ढंग से पारितोष प्रदान करती है। साहिर कहते हैं कि गंगा तेरा पानी अमृत। ठीक वैसी है, साहिर की शायरी। सबको सुख और संतोष देने वाली। तुलसीदास ने बहुत पहले कहा है- 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई।' कविता वही है जो गंगा के समान सबका हित करे। इस कसौटी पर साहिर की कविता सचमुच सबका हित करती है। उसे पढ़ते हुए, सुनते हुए गंगा स्नान करके गुज़रने जैसा लगता है। उन्होंने अपने गीतों में हमेशा इनसान की वकालत की और इनसान की तरह ही वे जीए।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार है। संपर्क- 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर, इंदौर-452010 (म.प्र.), मो. 9425167003

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

कवि हरमन हेस की कविताएं

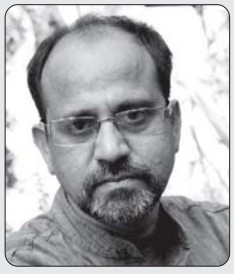

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

विश्व कविता में आज जर्मनी में जन्में स्विस लेखक और कवि हरमन हेस की तीन कविताओं का अनुवाद।

रेखांकन - विज्ञान व्रत

कवि

सिर्फ़ मुझ पर, इस अकेले पर,
रात के अंतहीन सितारे चमकते हैं,
ये पहाड़ी झरने फुसफुसाते हैं
अपने संगीत का जादू,
सिर्फ़ मुझसे, सिर्फ़ मुझ अकेले पर
आवारा बादलों की रंगीन छायाएं उतरती हैं
जैसे सपने उतरते हैं खुले मैदानों में।
न घर न खेत खलिहान, न जंगल
न शिकार की सुविधाएँ मेरे पास हैं,
जो मेरे पास है उस पर किसी का हक नहीं,
जंगल के आवरण के पीछे
वेग के साथ बहता झरना,
दहशत पैदा करता समुद्र,
अपने खेल में मगन परिंदों की तरह
शोर मचाते बच्चे,
शाम की नीरवता के बीच
प्रेम में डूबे किसी मनुष्य का रोना, गुनगुनाना।
ये देवताओं के मंदिर मेरे भी हैं
और मेरे हैं
ये दरखतों की कतारों वाले अतीत के बगीचे।
और तो और, ये स्वर्ग की चमकती हुई मेहराबें
भविष्य का मेरा घर हैं
अकसर कामनाओं के आवेग में
उड़ान भरती मेरी आत्मा,
देखती है समृद्ध लोगों का भविष्य,
क़ानून पर भारी पड़ता प्रेम,
एक दूसरे से प्रेम करते लोग।
मैं उनसे एक बार फिर मिलता हूँ, शानदार
बदले रुप में
किसान, राजा, व्यापारी,
अपनी दिनचर्या में व्यस्त नाविक,
गडरिये और माली, सब के सब
भविष्य की दुनिया का जश्न मनाते हुए।
बस एक कवि है जो इस जश्न में
कहीं नहीं दिख रहा,
एक अकेला वही जो देखता है,
मनुष्य की इच्छाओं को सम्हाले,
एक धुसर आकृति
जिसकी जरूरत भविष्य को नहीं है।
अनगिनित फूल मालाएं
मुरझा रही हैं उसकी कब्र पर
पर उसे कोई याद नहीं करता।

बहुत भारी हैं दिन

बहुत भारी हैं दिन
ये दिन बहुत भारी हैं।
कहीं कोई आग नहीं जो
मुझे ऊष्मा दे सके,
कोई सूर्य तक नहीं
जो मेरे साथ ठहाके लगा सके,
सब कुछ नग्न,
सब कुछ सर्द और निर्मम,
यहाँ तक कि प्रिया भी,
सितारे सूनी निगाहों से नीचे देख रहे हैं,
जब से मेरे दिल ने जाना
कि मर भी सकता है प्रेम।

■

गीत

शिशिर उपाध्याय के गीत

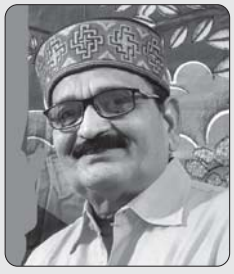

शिशिर उपाध्याय

जन्म : 10 फरवरी, 1958, खंडवा (म.प्र.)
शिक्षा : बी.एस.सी. (कृषि)
प्रकाशन : तुम्हारे लिए (काव्य संग्रह), वो घर नहीं रहा (काव्य संग्रह), नदी प्रकृति तुम और मैं (काव्य संग्रह) जँव सी तू गयोज गाँव सी (निमाड़ी लोक भाषा काव्य)।
सम्पर्क: 21, सृजन शर्मा कॉलोनी, बड़वाह, जिला खरगोन-451115 (म.प्र.)
मो.: 9926021858

दिवस का अवसान होने जा रहा है...

दिवस का अवसान होने जा रहा है,
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है
डाल कर कांधे पे केशरिया दुपट्टा,
साँझ की शैया पे सोने जा रहा है...

चल दिया था सूर्य इक तूफान लेकर,
साथ में किरणों के अग्निबाण लेकर,
थरथराई थी, धरा की दस दिशाएं,
पंछी भी भागे थे अपने प्राण लेकर,
क्षत-क्षितिज लहू-लुहान होने जा रहा है,
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है...

चढ़ के माथे पे मेरे तपती रही,
सूर्य की माला को वो जपती रही,

रेखांकन - विज्ञान व्रत

बात उसके चलन की हम क्या कहें,
दोपहर भर धूल संग रमती रही
उस धूप का अभिमान ढहने जा रहा है...
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है,

मांझियों ने जाल खींचे ताल से
लो पत्तियाँ बिछुड़ी हैं,अपनी डाल से,
बजने लगी है, मंदिरों में घंटियाँ
शंख -ध्वनि भी आ रही महाकाल से
वो मौलवी अज़ान देने जा रहा है
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है...

गोधुली बेला की उड़ती धूल है
घर के लिये पशुप्राण भी व्याकूल है,
बढ़ने लगी है वृक्षों की परछाइयाँ,
साँझ ढलने के लिये आकूल है,
लो तिमिर अब मेहमान होने जा रहा है..
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है..

रिक्त हो चुका है दिनकर का ये प्याला,
चल दिया अवकाश पर कल तक उजाला
सो गए पहाड़, जंगल, बस्तियाँ
जागती बैठी है, बस मरघट की ज्वाला,
लो दीप का गुणगान होने जा रहा है
सूर्य अंतरधान होने जा रहा है

डाल कर कांधे पे केशरिया दुपट्टा
साँझ की शैय्या पे सोने जा रहा है...

युग युग का प्यासा यह चातक

सब कुछ है यहां, सिवा तुम्हारे
सूनी अंखियाँ पंथ निहारे
युग -युग का प्यासा यह चातक
सावन की स्वाति को पुकारे...

आसमान की छत पर सूरज,
कहता मुझको रख तू धीरज,
विंध्याचल पर खड़े हुवे हैं...
अमलतास,गुलमोहर सजधज,
पवन लहर के संग बहते हैं
बादल सम बगुले बंजारे...
सब कुछ है यहां...

मां रेवा के तट पर साधक
और कंदरा में आराधक
पत्थर -पत्थर सुन रहा है
हृदयांचल की बढ़ती धक-धक
जल बिन मछली तड़फ रही है
कैसे नादां हैं मछुआरे...
सब कुछ है यहां ...

तुमको रेवा के रव में ढूँढा
अंगूरी आसव में ढूँढा
डूब चुकी मीरा अंतर तक
उस मोहन माधव में ढूँढा
डूबा जब मन के अंदर मैं
पाया तुमको बाँह पसारे,,
सब कुछ है यहां ...

■

कविता

शिव मोहन सिन्हा की कविताएँ

शिव मोहन सिन्हा

जन्म : 18 फरवरी 1950
शिक्षा : स्नातकोत्तर एवं
एल एल बी
प्रकाशन :
तीन पुस्तकें
1. नियति का सत्य (2016),
2. एक और शून्य (2019),
3. प्रणयिनी (2021)
पता : 3/223 विकास खंड,
गोमती नगर लखनऊ-226010
दूरभाष : 9839114796

एक खौफनाक सा शहर

वक्त समेटे है
न जाने कितने
खंडहरों के रक्त,
न जाने कितनी
प्यासी नदियों की बेचैनी,
उन मरते हुए पलों की संवेदनाएं,
जिनमें रोशनी घुट घुट कर
अँधेरों से लिपटना चाहती है।

सन्नाटों पर डर का साया,
दूर कहीं कोई आवाज नहीं,
जैसे सहमी सी बैठी हो कोई बेवा,
रात के अँधेरे में
जैसे एक शान्त जुगनू का आक्रोश,
हर ओर एक अजीब सी छटपटाहट,

एक मुर्दा शान्ति,
घबराई सी खामोशी,
जैसे उसके बेचैन सपनों की
उड़ान के पर काट दिये गये हों।

ये कैसा अंधापन है,
जो आतंकी सा है,
डराता है, हर उस आँख को
जो कुछ देखना चाहती है,
हर उस हाथ को
जो कुछ करना चाहता है,
क्रूरता का यह तांडव,
बंद दरवाजों के पीछे से
आती सिसकियाँ,
खुली हवा में
साँस लेने की असहजता,
रेगिस्तान में
टूटे हुए ख्वाब की मानिंद
बिखरे हुए काँच के कुछ टुकड़े,
खंड़हरों में लम्बे लटकते
मकड़ी के जालों में उलझे
असंख्य कीट,
भूतिया महलों में
जैसे चमगादड़ों की सरसराहट,

रात्रि के गहन अंधकार में
हवाओं की सनसनाहट के बीच
खटकती दरवाजों की साँकलें,
भयावह सी लगती हैं,
जैसे पूँछ रही हों कि
ये सूना सा कोई घर है
या एक खौफनाक शहर।

भारत तपो भूमि

यह भरत धरा, यह पावन भू
ऋषियों,मुनियों की तपोभूमि,
पीली सरसों की धूप पहन
श्रंगरित सोंधि सी हरी भूमि।

उत्तंग शिखर, हिम आच्छादित
हैं देवदार के सघन निलय,
जिस पर आल्हादित पुष्प वायु
कण कण पुष्पित है गंधि मलय।

चिर प्रकृति है अनहद चित्रकार
रच रही गगन भवि इन्द्रधनुष,
मेघों की अनुरंजित चितवन
कुसुमित मधु ऋतु का इन्द्रायुध।

पर्वत पर स्वर्णिम पुष्प घाटि
भर रही प्रकृति में विविध रंग,
पिंडर घाटी के ब्रह्म कँवल
गौर्वान्वित करते सप्तशृंग।

है पुण्य धरा यह भारत की
अणु में रमते शिव,राम,कृष्ण,
मन पावन गंगा की धरती
गौरव जिसके वीरेश विष्णु।

■

कविता

विश्व पुस्तक दिवस पर विशेष

किताब की आब

–डॉ. राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'

ऐ किताब !
गई तेरी कितआब ?
एक वक्त होता था
जब तुझे हाथ में रख
मन में आता था रुआब।
पर आज तुझे छूने की भी
ज़हमत नहीं उठाता कोई नवाब।।

वो भी क्या दिन थे जब तुझे
अपने पास रखने की चाहत में
किताब घरों के आगे लगती थीं
लम्बी–लम्बी कतार।
होती थी मारम–मार।।
पुस्तकालयों से भी
हफ़्ते–दो हफ़्ते के लिए लिए ही सही
मिल जाए तू कैसे भी
इसी जद्दोजहद में लगे
रहना भी होता था स्वीकार।
रेलवे और बस स्टैंड्स पर बने
बुक स्टॉल्स पर और
रोज़ सुबह–सवेरे के साथ
छुट्टी वाले दिन सड़कों पर भी
मिलता था तुझे
तेरे दीदार करने वालों का
और ख़रीददारों का प्यार।
पर आज कहाँ खोता जा रहा है
तेरा अस्तित्त्व ?
आज घर में, पुस्तकालय में,
हर जगह तू बिना श्वांस लिए
निर्जीव की तरह पड़ी है।
और अड़ी है इसी ज़िद पर

रेखांकन - विज्ञान व्रत

कि मेरे अस्तित्व को पहचानने वाले
कल भी मेरे मुरीद थे,
आज भी मेरे मुरीद हैं,
और कल भी रहेंगे मेरे ही मुरीद।
क्योंकि मुझसे अधिक और कोई
नहीं हो सकता उनके मुफ़ीद।।
अब तोड़ दे अपना यह भरम
क्योंकि ये ज़माना अब वो नहीं रहा
जिसमें तुझे पाने की चाहत
इतनी होती थी कि
माँगने में भी नहीं करता था कोई शरम।।
अब सब हाई टेक हो चुके हैं।
लैपटॉप और मोबाइल की
दुनिया में ही पूरी तरह से
खो चुके हैं।
अब तुझे किसी पुस्तक भण्डार
या पुस्तकालय में नहीं खोजा जाता।
अब तुझे गूगल पर सर्च किया जाता है।
बिना समय गँवाए,
बिना खर्च किए,
स्क्रीन पर ही पढ़ लिया जाता है।

जितना अंश जहाँ से भी चाहे,
लेकर सेव कर लिया जाता है।।
क्या इतनी सुविधाएँ दे पाएगी तू ?
पहले तेरी सुरक्षा के लिए
अलमारियाँ बनवाई जाती थीं।
कीड़े–मकोड़ों से बचाने के लिए
फिनाइल की गोलियाँ
हर खन में डाली जाती थीं।
अब तेरे बाह्य अस्तित्व की
नहीं है कोई ज़रूरत।
नहीं देखना चाहता कोई
तेरी मनहूस सूरत।
फिर भी अड़ी पड़ी है ज़िद पर
कि मेरा अस्तित्व सदा से
रहा है और रहेगा।।
अबकी बची–खुची पीढ़ी को
और चुक लेने दे।
फिर तुझे सजा–सँवारकर
बाज़ार में लाने वाले ये बचे–खुचे
न प्रकाशक मिलेंगे,
न विक्रेता और ग्राहक।
इसलिए 'रजक' की बात मान,
मत हो परेशान,
और मिटा दे अपनी पहचान।
क्योंकि अब की पीढ़ी के लिए
धीरे–धीरे तू होती जा रही है अनजान।
खोती जा रही है तेरी पहचान।
क्योंकि समय से बड़ा
नहीं हुआ कोई बलवान।।
नियति पर भरोसा रख
और अपनी विदाई का मज़ा चख।।

■

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत की ग़ज़लें

विज्ञान व्रत

जन्म : 17 अगस्त, 1943, तेड़ा, मेरठ (उ.प्र.)
शिक्षा : एम.ए. ललित कला, बी.एड., डिप्लोमा (चित्रकला)
प्रकाशन : बाहर धूप खड़ी है, चुप की आवाज़, जैसे कोई लौटेगा, तब तक हूँ, मैं जहाँ हूँ, शर्मिन्दा पैमाने थे, किसका चेहरा पहना है, खिड़की भर आकाश, नेपथ्यों में कोलाहल आदि।
सम्पर्क : एन. 138, सेक्टर-25, नोएडा-201301
मो- 9810224571

रेखांकन - विज्ञान व्रत

ग़ज़ल 1

पास आना चाहता हूँ
बस बहाना चाहता हूँ

आप से रिश्ता नहीं तो
क्या निभाना चाहता हूँ

सिर्फ़ मुझसे ही रहे जो
वो ज़माना चाहता हूँ

काश खुद भी सीख पाता
जो सिखाना चाहता हूँ

जो मुझे हैं याद उनको
याद आना चाहता हूँ

ग़ज़ल 2

आप कब किसके नहीं हैं
हम पता रखते नहीं हैं

जो पता तुम जानते हो
हम वहाँ रहते नहीं हैं

जानते हैं आपको हम
हाँ मगर कहते नहीं हैं

जो तसव्वुर था हमारा
आप तो वैसे नहीं हैं

बात करते हैं हमारी
जो हमें समझे नहीं हैं

ग़ज़ल 3

मैं जब खुद को समझा और
मुझमें कोई निकला और

यानी एक तजुरबा और
फिर खाया इक धोखा और

होती मेरी दुनिया और
तू जो मुझको मिलता और

मुझको कुछ कहना था और
तू जो कहता अच्छा और

मेरे अर्थ कई थे काश
तू जो मुझको पढ़ता और

ग़ज़ल 4

या तो हमसे यारी रख
या फिर दुनियादारी रख

खुद पर पहरेदारी रख
अपनी दावेदारी रख

जीने की तैयारी रख
मौत से लड़ना जारी रख

लहजे में गुलबारी रख
लफ़्ज़ों में चिंगारी रख

जिससे तू लाचार न हो
इक ऐसी लाचारी रख

ग़ज़ल 5

दुनिया को समझाने वाले
पहले खुद को तो समझा ले

लोग पुकारें कैसे तुझको
कम-से-कम इक नाम रखा ले

कब से देख रहा सूरज को
वो अपनी आँखें न जला ले

देखो वो इक परदेसी है
इस बस्ती में घर न बना ले

कोई आने वाला होगा
अब तक जाग रहे घर वाले

■

आलेख

लोक संस्कृति

– डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

वेद में कहा गया है –संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्...[ऋग्वेद 10–191–2अथर्व 6–64–1]

हम एक दूसरे के साथ–साथ चलें, हम एक दूसरे से संवाद करें, हम एक दूसरे के मन को जानें, उसका अनुभव करें। व्यक्ति का व्यक्ति से, व्यक्ति का समष्टि से, और एक समष्टि का दूसरी समष्टि से संवाद चलता ही रहता है, उनकी मैत्री स्थापित होती है, राष्ट्रीय एकीकरण का भाव विकसित होता है, यह लोक संस्कृति की प्रक्रिया है। लोक संस्कृति विभिन्न समुदायों की साझा विरासत है, उसमें सबकी सहभागिता है, उसकी अविच्छिन्न परंपरा है, विश्वव्यापी मानवीय संवेदनाएं हैं। ये सहज संवेदना हैं, इनमें अपना–पराया का वर्गीकरण नहीं है। संस्कृति मनुष्य और मनुष्य के बीच में रिश्ता बनाती है मनुष्य और प्रकृति के बीच में एक रिश्ता बनाती है। इसी का नाम सामाजिक–प्रक्रिया है। यही समष्टीकरण की प्रक्रिया है। यही लोक संस्कृति है।

अध्यात्म भारत की लोक संस्कृति का अंग है। अध्यात्म क्या है ? अध्यात्म ऐसी कोई बात नहीं है, जो जिंदगी से दूर हो, अध्यात्म कोई ऐसी बात नहीं है कि जिसके लिए जंगल में जाना पड़े। असल में दूसरे के सुख में अपने सुख का जो अनुभव है दूसरे को अपना बनाने की जो प्रक्रिया है, वही अध्यात्म है। विविधता में समानता का भाव, अनेकता में एकता अथवा अद्वैत का भाव यह अध्यात्म ही तो है। पूरी प्रकृति उसका अपना परिजन है यह अध्यात्म है। अध्यात्म एक व्यक्ति की चेतना को दूसरे व्यक्ति की चेतना से जोड़ता है। प्रकृति के प्रत्येक जीव में एक चेतना का अनुभव करना अध्यात्म है– धरती माँ है, नदी मां है, चंदा मामा है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र ने इसे मानवस्वभाव कहा था, जो भीतर भीतर सब को जोड़ता रहता है, एक महाद्वीप को दूसरे महाद्वीप से, एक चेतना को दूसरी चेतना से। गांव के लोग तीर्थ के लिए चलते हैं तो घर घर से अक्षत आते हैं हमारी ओर से भी एक अक्षत ले जाओ। अक्षतों के माध्यम से पूरा गांव तीर्थ यात्रा करता था, कोई पैदल तीर्थ यात्रा करके आता था तो उसके पैर पकड़ने के लिए पूरा गांव जुट जाता था। अध्यात्म मनुष्य की प्रतिष्ठा और उसकी मूलभूत एकता में है, अध्यात्म साधारण धर्मिता में है, अध्यात्म विश्वव्यापी मानवीय संवेदना में है। लोकसंस्कृति के व्यापक भाव में धर्मसंप्रदाय मजहब जाति की दीवारें गिर जाती हैं। अध्यात्म अर्थात् सर्वमंगल भाव, अध्यात्म अर्थात् सर्वात्म भाव। हरे पेड़ को मत काटना, जल दिव्य शक्ति है, उसे गंदा मत करना, फलदार वृक्ष को काटा नहीं जाता, रात्रि में वनस्पति शयन करते हैं, इसलिए फूल पत्तियों को नहीं तोड़ा जाता है, लोकसंस्कृति का अध्यात्म यही है।

एक व्यक्ति का जन्म और पोषण जिस सांस्कृतिक परंपरा में हुआ है, वह सांस्कृतिक परंपरा जीवन के संदर्भों को देखना सिखाती है। जीवन और उसके प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश को देखने समझने और व्यवहार करने की दृष्टि प्रदान करती है। लोक संस्कृति प्रशिक्षण देती है –ऊंच–नीच मत सोचे तोकों ऐसौ राम दबोचै। लोककथा लोकनृत्य उसकी इस प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं। अनेक प्रकार के नाटकों का सहारा लिया जाता है, जैसे सत्य हरिश्चंद्र का नाटक है, सत्यवान सावित्री का नाटक है या कृष्ण और सुदामा का संदर्भ है ,इसी प्रकार लोकोक्ति है– पुण्य की जड़ सदा हरी। एक गीत है–देख पराई नार मन न डुलाइयै हो माय, जो मन डिगुलनहार बहना कहि कें बोलिए हो माय।

लोक संस्कृति प्रकृति और मनुष्य के संबंध का निर्धारण करती है ,सामाजिक संबंधों का निर्माण करती है, असल बात तो यह है कि वह पशु को मनुष्य बनाती है सामाजिक बनाती है। लोकसंस्कृति व्यक्ति की जो मूल प्रवृत्तियां हैं, उनका समायोजन करके उसे सामाजिक बनाती है। परिस्थिति और पात्र के अनुसार मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का संयमन नियमन दमन और उन्नयन करती है।

समाज और प्रकृति से जीवनी शक्ति ग्रहण करने की शक्ति को प्रभावित करती है। लोक संस्कृति प्रेम मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा जैसे भावों का विकास करती है, लोकसंस्कृति सामाजिक विवेक की प्रतिष्ठा करती है उचित –अनुचित, पाप–पुण्य का विवेक जगाती है। जीवन के प्रयोजन का प्रतिपादन करती है जीवन मूल्यों का सम्मान करती है।

लोकसंस्कृति में मनुष्यता की प्रतिष्ठा है, लोकसंस्कृति में न्याय की प्रतिष्ठा है, लोकसंस्कृति में सर्वमंगल भाव की प्रतिष्ठा है। ■

निमाड़ में दीवी संग बेटी की बिदाई

– शिशिर उपाध्याय

फुलड़ा बिणन्ति तू चली वो लाड़कली
अपणा पिताजी का बाग मं ऽऽऽ....

दीवी संग बेटी की बिदाई और अन्य करुण गीत

आज भड़ळई नवमी है, अर्थात वर्षांत का अंतिम लग्न/विवाह मुहूर्त, दो दिन बाद ग्यारस को देव सो जाएंगे, चातुर्मास प्रारम्भ, आज बेटीयों की बिदाई का भी अंतिम दिन है। निमाड़ अँचल के विवाहों में अपनी विशिष्ट लोक परम्पराओं में एक है, बेटी की बिदाई,, ये वो करुणा के क्षण होते हैं, जब मण्डप मे उपस्थित हर सदस्य की आंखें पानीदार होती है। बिदाई का वह दृश्य मुझे करुणा के सागर में डुबो देता है जब मण्डप में लगे आम के पौधे को बेटी और दामाद दोनों सींचते है, पश्चात बिटिया माँ की कोख की पूजा करती है, और कृतज्ञ होकर आभार मानती है कि माँ तूने मुझे जिस कोख में 9 माह तक रखा, पश्चात इतना बड़ा किया, आज माँ मुझे आशीष दो की मैं जिस गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर रही हूँ, उसमें मैं सफल होऊँ। माँ मैं तुम्हारी लाड़कली हूँ ,जो इतने बरसों तक तुम्हारे बागों में पली बढ़ी,, बेटी के हाथ की दीवी को प्रज्वलित कर दिया जाता है और वो उस मण्डप के आम के फेरे लेती है,, दीवी अर्थात वंश के वह बेल, वह उजास जो दीप के प्रतीक स्वरूप वह इस कुल से उस कुल में ले जा रही है,, और इसके साथ –साथ महिलाओं के भरे हुवे कंठ से यह गीत चलता है 'फुलड़ा बिणन्ति तू चली वो लाड़कली, अपणा पिताजी का बाग मं ऽऽ,,

(गीत पूरा लगा है पढ़ें,) गीत का अर्थ है, की अपने पिताजी के आँगन और बाग, बगीचों में खेलने वाली, चिड़िया रूपी बिटिया फल और फूल चुनते हुवे न जाने कब बड़ी हो गई पता भी न चला कि उसकी मंगनी हो गई है और विवाह भी तय हो गया है, दुल्हव राजा भी आकर कहने लगे कि अपने पिताजी की लाड़ की बेटी अब तुम्हारे ससुराल जाने का दिन आ गया है, तुम अब इस सजी हुई पालकी में बैठ कर अपने देश, अर्थात ससुराल चलो,, कितने अच्छे संवाद है देखिए जो बेटी रूपी नायिका वर रूपी नायक को कहती है, निमाड़ी लोक का यह बड़ा ही हृदय विदारक गीत है, आप हमसे मिलने तो आ गए हैं लेकिन सबसे पहले तुम्हे हमारे पिताजी परखेंगे, तब ही हम तुम्हारे साथ जाने की हामी भरेंगें, फिर वो कहती है कि हमारे दादाजी पहले आवश्यक कन्यादान की व्यवस्था करेंगें, फिर हम चलेंगें तुम्हारे साथ, और उसके पहले हमारे जीजाजी ,फुआजी मण्डप को वन पुष्पों लता बेलों से आच्छादित करेंगे और हमारे मामाजी मामेरा लेकर आकर कुँवारी की पंगत देंगे तब ही तो हम आपके साथ जा सकेंगें। और हाँ मेरे भाई लोग सुंदर डोली /पालकी सजाएंगे तब ही हम उसमें बैठ कर जाएंगे आपके पीछे –पीछे,,

और फिर वो वही बात कहती है जो यहाँ सबसे पहले लिखी है कि 'जब हमारी माँ कोख पूजवायेगी' तब ही हम आपके साथ जा पाएंगे दुल्हव राजा जी।

और गीत अपने शिखर चढ़ता है, बेटीबाप से पूछती है कि मुझे तुमने इतना पाल पोस कर बड़ा क्यूँ किया, माँ से कहती है, तुमने मुझे अपना काचा दूध आज के लिये है पिलाया था। माँ –बाप सजल नेत्रों से कहते हैं हमने बेटी रूपी माया को पाल– पोस कर बड़ा किया है, और माँ की ममता ने तुम्हे अपने आँचल का काचा दूध पिलाया

की बेटी तू बड़ी होकर सद गृहिणी बने। इस गीत के अंतर भाव बड़े गहरे हैं, आप जितना भीतर उतरेंगे उतने विभिन्न भाव मिलेंगे। और बिटिया दीवी लेकर अपने दुल्हव राजा के साथ धीरे –धीरे प्रस्थान करती है, साड़ियों /लुगड़ों के कोर भीगे हुवे हैं, पिता, दादा, काका भाई की धोतियाँ, गमछे गीले हो रहें हैं, महिलाओं कंठ अवरुद्ध हो रहें हैं, छोटी, बडी बहन, दादी, को रह रह कर बेहोशी छा रही है, तभी बेटी को सीख देता हुआ एक और लोक गीत कोकिल कंठो से फूट पड़ता है, घूंघट से बिटिया के आंसुओं की धार बह रही है, (गीत दिया है, बेटी को सीख,)

मात कहे बात भली, सुण वो सुंदरी
लक्षधरी वात न ऽ निभावजे ओ स्याणी, कुल मत लजावजे।

माँ, अपनी सुंदर बिटिया को कहती है कि मैं तुम्हे लाखों की बातें बता रहीं हूँ, उन बातों को शब्दस: पालन करना, अपने कुल की लाज तेरे हाथ मे है इस कुल की बेइज्जती न हो, उसमें जो प्रमुख बातें ये हैं कि ससुर को पिता समान और सास को माता समान मान देना। जेठ के सामने धीरे –धीरे चलना, जेठानी को पूर्ण सम्मान देना, देवर को अपने भाई जैसे मानना और देराणी जब भी आवे उसे अपनी सहेली बना लेना,, ननन्द को अपनी बहन जैसे समझना और नंदोई तो घर के मेहमान ही हैं, उन्हें यथायोग्य आदर देना, और हिन्दू संस्कृति की सबसे बड़ी बात कह रही हूँ सुन लाड़की अपने पति की आज्ञा बिना पानी भी मत पीना और सम्पूर्ण कुटुम्ब की जब जैसी लगे सेवा करना.

बिटिया डोली में बैठते –बैठते कहती है

आला–नीळा बाँस की बाँसुरी, वू बी बाजती जाय
मोठा भाई की बईण लाड़ली, वु बी सासर जाय।।

अर्थात बाँसुरी कैसी भी हो उसे बजना ही है और लाड़ली बहन किसी की भी हो उसे आखिर सासरे जाना ही होता है। जब दुल्हन बिटिया सब कुछ भूल कर, कड़े हृदय से जाने लगती है, तब उसके पीछे –पीछे चल रहा समूह फिर करूण स्वर में कहता है,,

ज़रा पीछे घूम कर देखो तुम्हारे पिताजी खड़े हैं, उन्हें कुछ आशीर्वाद दे दो,,

पछा फिरो, पछा फिरो लाड़ी बाई
पिताजी ख़ ऽ देव आशीश
खाजो, पीजो पिताजी, राज करजो
जीवजो करोडों बरीस।।

और बिटिया जुवार की धानी लुटा –लुटा कर आशीष देते हैं, की आपका राज काज चलता रहे और करोडों बरस तक जीते रहो,,

और बारात अपने गंतव्य की ओर चल देती है, लोक स्वर हवा में फिर गूंजने लगते हैं,

छोड्यो माय को माहिरो, छोड्यो फूतल्या न को ख्याल
छोड्यो सई के रो सईपणो, लाग्या दुल्हव जी का साथ।।

सखी –सहेलियां कहती हैं ,की तुमने मां का माईक्या छोड़ दिया, गुड़ियों का खेल छोड़ दिया और तुम अपने दुल्हव मे इतना खो गई, के सभी सखी सहेलियों को भी भूल गई। और बारात की धूल में सब कुछ धूमिल होता जाता है। लोक –संस्कृति पुरुष पद्मश्री पण्डित रामनारायण उपाध्याय कहते हैं कि भारत के सभी प्रान्तों के लोक गीतों में बिटिया की बिदाई के दर्द का स्वर एक सा है।।

मेरे एक गीत का बंद है

बिटिया है चिड़िया सी माया, जैसे धूप के पीछे छाया
साँझ ढले ये उड़ जाएगी, अपना लेगी देस पराया।।
जीवन भर न भर पायेगा, ऐसा है यह घाव
के बिटिया ब्याह रही परगाँव,,

आपका ही,

संपर्क – 9926021858

■

प्रसंग

संस्कृति और कला

आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल की एक पुस्तक 'संस्कृति और कला' साहित्य भवन, इलाहाबाद से 1952 में प्रकाशित हुई थी। उसकी प्रस्तावना में वे लिखते हैं-

''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगीण प्रकार है। संस्कृति विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना है। विचार और कर्म के क्षेत्रों में राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी संस्कृति है, संस्कृति मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति है। संस्कृति जीवन की प्राणवायु है, जो उसके चैतन्यभाव की साक्षी देती है। संस्कृति के द्वारा हम दूसरों के साथ संतुलित स्थिति प्राप्त करते हैं। विश्वात्मा के साथ अद्रोह की स्थिति और संप्रीति का भाव उच्च संस्कृति का सर्वोत्तम लक्षण हैं। संस्कृति के द्वारा हम स्थूल भेदों के भीतर व्याप्त एकत्व के अन्तर्यामी सूत्र तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं और उसे पहचानकर उसके प्रति अपने मन को विकसित करते है। प्रत्येक राष्ट्र की दीर्घकालीन ऐतिहासिक हलचल का लोकहितकारी तत्त्व उसकी संस्कृति है। संस्कृति राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकता है। वह मानवी जीवन को अध्यात्म प्रेरणा प्रदान करती है। उसे बुद्धि का कुतूहल मात्र नहीं कहा जा सकता। जिन मनुष्यों के सामने संस्कृति का आदर्श धूमिल हो जाता है उनकी प्रेरणा के स्रोत भी मन्द पड़ जाते हैं। सच्ची संस्कृति वह है जो सूक्ष्म और स्थूल, मन और कर्म, अध्यात्म- जीवन और प्रत्यक्ष- जीवन इन दोनों का कल्याण करती है। वेद व्यास का कथन है कि लोकजीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान उसके सम्पूर्ण ज्ञान के लिये अत्यन्त आवश्यक है-प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर:। लोक का जो प्रत्यक्ष जीवन है उसको जाने बिना हम मानव-जीवन को पूरी तरह नहीं समझ सकते। जो इस जीवन का निराकरण करते हैं और केवल परलोक की ही कामना करते हैं सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधूरा है। वस्तुत: तो इसी लोक में और प्रत्यक्ष जीवन में मिलने वाली जो सिद्धि है ,यही परम कल्याण है। मनुष्यलोके यच्छ्रेय: परं मन्ये युधिष्ठिर। अर्थात् हे युद्धिष्ठिर, मनुष्यलोक में या मानवी-जीवन में जो श्रेय सिद्ध होता है उसी को मैं महत्व देता हूँ।

निस्संदेह भारतीय संस्कृति में सब भूतों में व्याप्त एक अन्तर्यामी अध्यात्म -तत्व को जानने पर अधिक बल दिया गया है। किन्तु यह समझना भारतीय संस्कृति के साथ अन्याय है कि उसमें इस लोक के मानवी-जीवन को सुन्दर सुशान्त, समृद्ध और सन्तुलित बनाने पर ध्यान नहीं दिया गया। दर्शन, तत्वज्ञान, साहित्य, कला, धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान इत्यादि अनेक क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति ने अपना विकास किया था। पार्थिव जीवन को जानने, समझने और उसमें रस लेने का भरपूर प्रयत्न भारतीय संस्कृति में देखा जाता है। भारतीय संस्कृति उन समस्त रूपों का समुदाय है जिनकी सृष्टि मानवीय प्रयत्नों से की गई, उनमें से अनेक रूप हमें उत्तराधिकार में प्राप्त हुए हैं। वे हमारे जीवन में पिरोए हुए हैं। उनकी उदात्त प्रेरणाओं को लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। इसके साथ ही जो रूप 'काल- मलिन' हो चुके हैं, उन्हें छोड़ना होगा और अनेक नये रूपों का स्वागत करना होगा । सच्ची संस्कृति आत्म-विश्वास से प्रेरित होती है। उसे नवीन या नूतन से भय नहीं लगता। आधुनिक भारतीय संस्कृति को भी पूर्व और नूतन के समन्वय की साधना के मार्ग पर आगे बढ़ना है।

''स्थूल जीवन में संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है। कला का सम्बन्ध जीवन के मूर्त रूप से है। संस्कृति को मन और प्राण कहा जाय तो कला उसका शरीर है। कला मानवीय जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। सृजन शक्ति, कला की उपासना पर निर्भर है। कला कुछ व्यक्तियों के विलास -साधन के लिये नहीं होती। साँची और भारहुत के महान स्तूपों, अजन्ता के भित्तिचित्रों और वेरूल के एकाश्मक कैलास मन्दिर की भाँति कला लोक के शिक्षण, आनन्द और अध्यात्म साधना के उद्देश्य से आगे बढ़ती है। भारतीय कला का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। नगर और गाँवों के जीवन में प्राचीन काल से आने वाले अनेक सूत्र अब भी बिखरे हुए हैं। बंगाल की अल्पना राजस्थान के मेंहदी, माँडने, बिहार के ऐपन, उत्तर प्रदेश के चौक, गुजरात-महाराष्ट्र की रंगोली और दक्षिण-भारत के कोलम, इनके वल्लरी- प्रधान और आकृति -प्रधान अलंकरणों में कला की एक अति प्राचीन लोकव्यापी परम्परा आज भी सुरक्षित है। उसे अपनी शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में पुन: सुप्रतिष्ठित बनाना होगा। इसी प्रकार से वस्त्र, आभूषण, बर्तन, उपकरण, चित्र, शिल्प, खिलौने, जहाँ जो सौन्दर्य की परम्परा बची है, उसे सहानुभूति के साथ समझकर पुन: विकसित करना होगा। भारतीय कला न केवल रूप विधान की दृष्टि से समृद्ध है उसकी शब्दावली भी अत्यन्त विकसित है, जैसा कि इन लेखों में निर्देश किया गया है। समय रहते कला की पारिभाषिक शब्दावली की रक्षा करना आवश्यक कर्त्तव्य है। इस प्रकार के प्रयत्न न केवल हिन्दी में बल्कि अन्य प्रादेशिक भाषाओं में उन उन क्षेत्रों के लिये होने चाहिए। उसके फलस्वरूप हम अन्त में एक समृद्ध शब्दावली से परिचित हो सकेंगे जिसकी इस समय हमारी भाषाओं को आत्म-विकास के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

- वासुदेवशरण, काशी विश्वविद्यालय 8/10/1952

सौजन्य : डॉ. राजेन्द्र रजन चतुर्वेदी

■

आलेख

कला और साहित्य का अन्त:संबंध

डॉ. अनुपमा चौहान

सप्तपर्णी कला साहित्य सृजन शोध पीठ भोपाल में प्रख्यात चित्रकार कला समीक्षक, शिक्षाविद् प्रो. राजाराम की स्मृति में आयोजित 'कला और साहित्य में अन्त:संबंध' विषयक संगोष्ठी में दिया गया विशेष व्याख्यान।

ओ संसार के रचनाकार
सृजन के जादू कहाँ से लाया तू
रंगों और भावों की
विविध छटाओं को बिखेर कर
बार-बार छुपकर मुस्कुराया तू।

तेरी सृष्टि क्या है!
अद्भुत कविता है
या शून्य के कैनवास पर रचा गया
अतुलनीय आख्यान है ?

कभी शब्द है तू
कभी नाद है
कभी थिरकन है तू
कभी अंगुलियों से देता
मिट्टी को आकार है।

हर कला तेरी आराधना है
अनुभूति के स्तर पर तू वही है
बस, तेरी अभिव्यक्ति के साधन अनेक हैं।

जब हम अनुभूति की प्रक्रिया से गुजरते हैं तो चाहे हम कवि हों, लेखक हों, चित्रकार हों, संगीतकार हों, नर्तक हों – ईश्वरीय सृष्टि के विभिन्न भाव, रूप, रंग को अपनी आत्माभिव्यक्ति का आधार बनाते हैं। जीवन के सुख-दुखादि विभिन्न विकारों को सहना-स्वीकारना सामान्य मनुष्य होने की बाध्यता है, पर जीवन के इन परिवर्तनों को जब हम कलाकार के रूप में स्वीकारते हैं तो इन्हें जीने के साथ ही, अपनी अनुभूति के साथ घोल लेते हैं और उसके साथ एकाकार हो अभिव्यक्ति के प्रशान्त महाकाश में उन्मुक्त हो जाते हैं। ये अभिव्यक्ति हमें बंधन से मुक्ति की ओर ले जाती है और यही मुक्ति कला का प्राण है। फिर वह कला चाहे लेखन हो, चित्र सृजन हो, संगीत हो या नृत्य हो।

प्राचीन काल से ही साहित्य और कला के संबंध में चर्चा होती आई है। साहित्य और कला की भिन्नता के पक्षधर भी जहाँ

अनेक विद्वान हैं, वहीं अनेक विद्वान इनके पारस्परिक संबंध को हमारी संस्कृति का अत्यंत विशिष्ट और रमणीय पक्ष मानते हैं।

सभी विद्वानों के मतों पर विचार करने के पश्चात मुझे लगता है कि कला और साहित्य को अलग करके देखना सही नहीं है। क्योंकि लेखन भी एक कला है, शब्दों को भी गढ़ना पड़ता है, तराशना पड़ता है। तभी एक अमरकृति का जन्म होता है।

एक सिद्धहस्त चित्रकार का चित्र क्या कहानी नहीं सुनाता ? अपने भीतर छुपी कविता को नहीं गुनगुनाता ? वहीं एक कविता, कहानी या उपन्यास पाठक के मन पर जीवंत चित्र उपस्थित नहीं करते ? रंग और रेखाओं की सुन्दरता का शब्द चित्र नहीं खींचते ?

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल साहित्य एवं कला संबंधी इस सांस्कृतिक व्याख्या का मर्म समझाते हुए अपनी पुस्तक 'कला और संस्कृति' में लिखते हैं – 'भारत वर्ष में साहित्य (काव्य) ने कला के रूप को समृद्ध किया है और कला ने साहित्य की व्याख्या की है। साहित्य में जो विषय पारिभाषिक शब्दों से उल्लेखित होने पर भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है वह कला के मूर्त उदाहरण से स्पष्ट होगा। कला के उदाहरण में जो अर्थ मूक रूप में उपस्थित है, वह साहित्य या काव्य की भाषा और शब्दावली से सजीव होकर अपना परिचय देगा। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतीय कला एक प्रकार से साहित्य की

ही मार्मिक व्याख्या है। कला की आँख से साहित्य और साहित्य की आँख से कला को देखना हमारे वर्तमान सांस्कृतिक युग की एक बड़ी आवश्यकता है। (साहित्य का विश्लेषण/डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद / पृष्ठ-3/ भारती भवन, पटना-4)

हिन्दी साहित्य की महान कवयित्री महादेवी वर्मा जिनकी चित्रकला में भी गहन अभिरूचि थी। उनके बनाए चित्र उनकी कविताओं में मुखर हो उठते हैं। अपने 'काव्य-कला' संबंध निबंध में लिखती हैं - 'बहिर्जगत से अन्तर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भावक्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार किया होगा।

काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं, उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे। एक पागल से चित्रकार को जब फटा कागज, टूटी तूलिका और धब्बे डाल देने वाला रंग मिल जाता है, तब क्षण भर में वह निर्जीव कागज जीवित हो उठता है, रंगों में कल्पना साकार हो उठती है, रेखाओं में जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है, उस पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हम हँसते हैं और उसे मानवीय संबंधो में बाँध रखना चाहते हैं। एक निरर्थक झनझन से पूर्ण, टूटे एकतारे के जर्जर तारों में गायक की कुशल उँगलियाँ उलझ जाने पर उन्ही तारों में हमारे सारे सुख-दुख, रो हँस-उठते है, सारी सीमा के संकीर्ण बच्चन छिन्न-भिन्न होकर बह जाते हैं और हम किसी अज्ञात सौन्दर्य लोक में पहुँचकर चकित से, मुग्ध से उसे सदा सुनते रहने की इच्छा करने लगते हैं। निरन्तर पैरों से ठुकराए जाने वाले कुरूप पाषाण से शिल्पी के कुशल हाथ का स्पर्श होते ही, वही पाषाण मोम के समान अपना आकार बदल डालता है, उसमें हमारे सौन्दर्य के, शक्ति के आदर्श जाग उठते हैं और तब उसी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित कर चन्दन फूल से पूजकर अपने को धन्य मानते है। (महादेवी साहित्य-1 /काव्य कला / सं. ओंकार शरद/ पृष्ठ-193-194 / सेतु प्रकाशन, झाँसी)

स्पष्ट है कि साहित्य और कला अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। इसलिए साहित्य और कला की चर्चा 'सृजन' मानकर कर्ता अधिक समीचीन होगा।

सृजन का क्षण कवि और रचयिता दोनों के लिए विलक्षण होता है क्योंकि इस क्षण मुक्ति का सदेह, सजीव भोग है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों ने सृजन की विलक्षणता को स्वीकार किया है। (काव्यालोचन में सौंदर्य दृष्टि/डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा/साहित्य सहकार, दिल्ली/पृष्ठ-202-203)

सामान्यतया हम सुन्दर शब्द को पार्थिव रूप में ग्रहण करते हैं जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके और हमारे मन को सुहावना लगे।

सृजन के जितने भी आयाम हैं उनके साधनों में पार्थिवता रहती है। हाँ, उसमें स्थूल एवं सूक्ष्म का कुछ अन्तर अवश्य हो सकता है। लेकिन मिट्टी की मूरत से लेकर, चित्र, शब्द, सरगम और नृत्य का ये वृहद 'सृजन-संसार' भाव और विचार के विराट फ़लक पर ही जन्म लेता है।

प्रत्येक कृति पहले रचनाकार के मन में जन्म लेती है। मन में अवतरित वह रूप इतना सुन्दर होता है कि उसे बाहरी साधनों से अभिव्यक्त कर पाना कठिन हो जाता है। उस मानसिक कृति को लोक के सामने लाना एक कठोर साधना है जो दीर्घ परिश्रम और परिष्कार की अपेक्षा रखती है। हर रचना में लय, संवाद और संगति अनिवार्य है।

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त अपनी पुस्तक 'महादेवी : नया मूल्यांकन' में लिखते है - 'वास्तु, मूर्ति एवं चित्र में सौन्दर्य की साकार परिणति तो रहती है पर भाषा के अभाव में वहां ज्ञान का प्रकाश या सत्य की गरिमा अधिक स्पष्ट नहीं हो पाती। जहाँ इन कलाओं में सत्य के मौन रूप का चित्रण होता है वहाँ काव्य में वह मुखर होता है, इसी से उसमें सत्य की प्रमुखता हो जाती है, सौन्दर्य केवल साधन रह जाता है।' (महादेवी : नया मूल्यांकन / डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त / पृष्ठ-29 /

मुझे लगता है कि जैसे साहित्यिक कृति में हमें विभिन्न रसों, गुणों और शक्ति का आभास होता है वैसे ही प्रत्येक कलाकृति किसी न किसी रस, गुण और शक्ति को अभिव्यक्त करती है।

ये अवश्य है कि साहित्य के पास भाषाओं की विविधता है तो वहीं अन्य कलाकृतियों के पास मौन भाषा है। वह भी कलाप्रेमी से, सहृदय से पूरा-पूरा संवाद करती है। पर साहित्य जहां विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य अनुवाद की अपेक्षा रखता है, वहीं एक चित्र या कलाकृति देखने वाले को उसकी ही भाषा में अपना संदेश पहुँचा देती है, क्योंकि उस मौन संवाद में किसी भाषा विशेष की अपेक्षा नहीं होती।

अंतर इतना ही है कि साहित्य चूंकि भाषा पर आधारित होता है, अत: विस्तार जल्दी पाता है। संचार के साधनों ने साहित्य की जन-जन तक पहुँचने की यात्रा सुगम कर दी है। भाषा चूंकि श्रवण केन्द्रित है, इसलिए हम जन्म से ही सुन-सुन कर भाषिक संस्कार को

ग्रहण कर लेते हैं और जाने कितने ही गीत, भजन, कविता, कहानियाँ सहज ही हमारी स्मृति का अभिन्न अंग बनती चली जाती हैं। श्रवण के माध्यम से सीखे जाने की इसी विशेषता ने साहित्य के क्षेत्र को व्यापक, जनसुलभ बनाया है जो आसानी से हस्तांतरित भी होता है। पर अर्थगांभीर्य का जो आनंद है, वह गुणग्राहक रसिक श्रोता या पाठक ही उठा पाता है।

साहित्य ही क्यों हर कृति प्रतीक्षा करती है उसकी अन्तरात्मा में छुपे अर्थ को, संदेश को समझ सकने वाले दर्शक, श्रोता या पाठक की, क्योंकि तभी वह सार्थक होती है।

हर रचना किसी न किसी उद्देश्य को लेकर अपनी यात्रा तय करती है। 'स्वांत: सुखाय' से प्रारंभ यात्रा 'सत्यं शिवं सुन्दरं' तक पहुँचकर लोक के भाव का परिष्कार कर 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का उद्घोष करती है। जो सृजन सत्य पर आधारित होता है, वहीं शिव की प्रतिष्ठा होती है और जिसमें सत्य और शिव एकाकार होते हैं वही कृति वास्तव में सुन्दर होती है।

सृजन के हर आयाम का यात्रा पथ यही है। पाथेय अलग-अलग हैं, पर लक्ष्य एक है। कलात्मक अवगुंठन भले ही अलग दिखाई देता हो, पर भाव सूत्र एक है। ससीम का असीम में मिलन हर रचना का सत्य है, जहाँ रचनाकार मुक्त होकर भी मुक्त नहीं होना चाहता –

उस असीम का सुन्दर मन्दिर
मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहतीं
नित प्रिय का अभिनंदन रे!

– विभागाध्यक्ष हिन्दी
श्री सत्य साई महिला महाविद्यालय, भोपाल

■

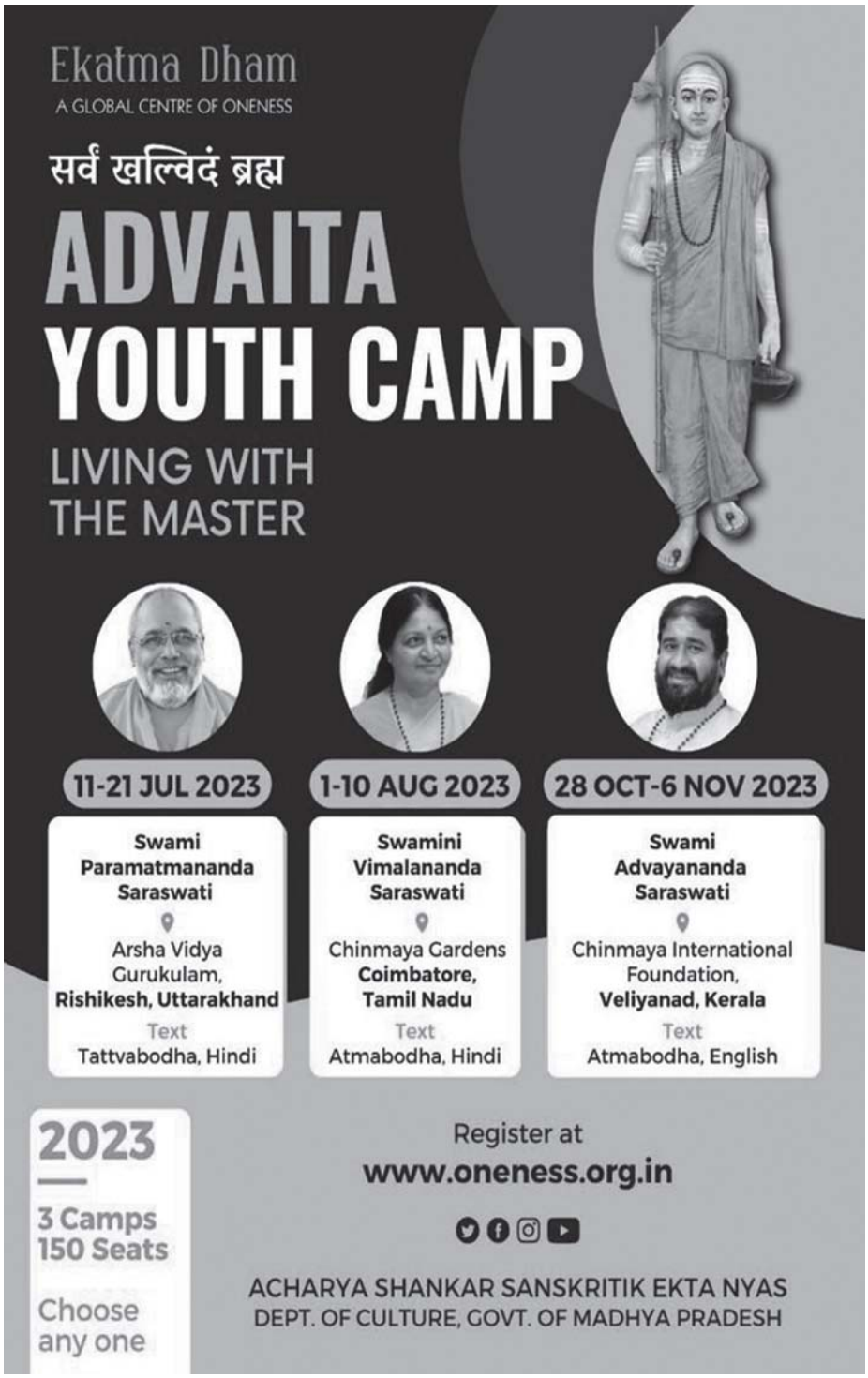

कला समय में विज्ञापन हेतु संपर्क करें
सांस्कृतिक संस्थाओं को विशेष रियायत दी जायेगी।
-: संपर्क :-
सम्पादक, मो.: 9425678058

पुस्तक समीक्षा

लोक उनकी स्मृतियों में टहलता है

– सोमदत्त शर्मा

पुस्तक विवरण–

कृति	:	निमाड़ का सांस्कृतिक लोक
लेखक	:	डॉ. सुमन चौरे
प्रकाशक	:	इन्दिरा पब्लिशिंग हाउस, अरेरा कॉलोनी, भोपाल
मूल्य	:	₹895/–
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

समाज की सामूहिक समझ का व्यवहारिक रूप ही संस्कृति कहलाती है। जन्म से मृत्यु तक होने वाले सोलह संस्कार, संस्कारों के समय सम्पादित होने वाले रीति–रिवाज, पर्व और त्यौहार आदि हमारी सामूहिक समझ का ही मूर्त रूप हैं जिसे हमारे पूर्वजों ने अनुभव, अनुसन्धान और अनुकूलन की प्रक्रिया से गुजरते हुए विकसित किया है। इस सामूहिक समझ का स्वरुप अत्यंत व्यापक और गहरा होता है। इसे सामूहिक चेतना भी कह सकते हैं। यही सामूहिक चेतना एक समाज को दूसरे समाज से भिन्न पहचान देती है। गहराई से परखने पर एक ही धर्म के अनुयायी भले ही भिन्न भिन्न जाति–समुदायों में बंटे दिखाई देते हों। स्थानीय परिस्थितियों के कारण उनके देवी – देवताओं के नाम, रूप, गुण भिन्न लगते हों। लेकिन, सबके मूल में एक ही समझ, एक ही सामूहिक चेतना प्रतिबिंबित होती है। उदाहरण के लिए जिन दिनों उत्तर भारत में होली के त्यौहार की धूम होती है उसी के आस पास अरुणाचल की गाला जनजाति 'मोपिन' का त्यौहार मनाती है। गाला समुदाय में 'मोपिन' को लक्ष्मी का रूप माना जाता है। इसमें गाला जनजाति के लोग मिथुन की बलि देते हैं। बलि के समय मिथुन के मस्तक से जो रक्त की धार फूटती है उस से छिटकने वाले रक्त कणों को मिथुन के चारों ओर नाचती–गाती गालो महिलायें अपने आँचल में लेती हैं। उनके लिए यह सौभाग्य सूचक होता है। इसके बाद धवल वस्त्र पहने महिलाओं और पुरुषों की टोलियाँ पंक्तिबद्ध होकर गीत गाती हुई मिकलती हैं। टोली को कोई एक महिला या पुरुष लीड करता है। लीडर गीत गाता है और टोली के अन्य सदस्य उसे दोहराते हुए चलते हैं। ये टोलियाँ एक स्थान पर आकर एकत्र होती हैं। इस दौरान चावल के पिसे हुए आटे को पानी में मिलाकर एक–दूसरे को मलते हुए देखा जा सकता है।

उत्तर भारत में होलिकोत्सव भी नवान्ह के अग्नि को अर्पित करने का पर्व है। होली को नवान्ह भोग के बाद यहाँ भी रंगों का खेल शुरू होता है। रंगों का उल्लास उत्तर–पूर्व और उत्तर भारत दोनों में एक जैसा होता है। भोग चाहे नवान्ह के रूप में हो या मिथुन के रूप में हो सब जगह एक जैसी चिन्तनशीलता दिखती है क्यों कि दोनों में सबके कल्याण की कामना होती है। स्थानीय परिस्थितियों ने पर्व के स्वरुप को भले ही थोडा भिन्न कर दिया है। लेकिन 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का भाव समूचे भारत में सब जगह एक सा है । 'निमाड़ का सांस्कृतिक लोक' भी इस से भिन्न नहीं है।

'निमाड़ का सांस्कृतिक लोक' पुस्तक में निमाड़ी लोक साहित्य की विशेषज्ञ डॉ. सुमन चौरे ने, अपने पचास लेखों में ऐसे न जाने कितने सन्दर्भ दिए हैं जो बचपन से उनके भीतर रचे बसे हैं। ये लेख मध्य प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र के सांस्कृतिक आख्यान की तरह हैं जो लोक की स्मृतियों मेंअपना स्थान बनाए रखते हैं। संस्मरणात्मक शैली में लिखे गये ये लेख डॉ. सुमन चौरे की स्मृतियों के शब्द रूप ही हैं। इनमें जन्म से मृत्यु तक निमाड़ क्षेत्र में प्रचलित रहे संस्कारों

और तत्संबंधी रीति रिवाजों के संस्मरण हैं तो दूसरी ओर होली, दीवाली, गणगौर, अखाती तीज, रक्षाबंधन, शरद पूर्णिमा, आदि स्थान मिला है।लेखों में काठी वाले, संत सींगा जी महाराज, गुरु, तीर्थ, और गरवा जैसे आनुष्ठानिक पर्व, शरद पूर्णिमा आदि के साथ परिवार, तीर्थ, नर्मदा आदि से लोक पर्वों का स्मरण किया गया है। लोक गीत, लोकोक्तियाँ, लोक बोलियाँ, लोक परम्पराओं के साथ लोक मानस में अंकित वे सारे सांस्कृतिक, धार्मिक और अनुष्ठानिक लोक रूप विद्यमान हैं। इन लेखों में लेखिका बार बार अपने बचपन की ओर लौटती हैं। क्यों कि उन्हें निरंतर महसूस होता है कि लोक जीवन में कुछ है जो छीज रहा है। यह जो छीज रहा है उससे निमाड़ के सांस्कृतिक जीवन का प्रभामंडल बनता है। और इसमें जो नया जुड़ रहा है वह निमाड़ के सांस्कृतिक जीवन से शायद मेल नहीं खाता। लेखिका का गंभीर प्रयास है कि वह निमाड़ के संस्कृति लोक के उस प्रभामंडल को बचा सकें। सुमन जी के बारे में डॉ. विजय बहादुर सिंह ने ठीक ही लिखा है–

''... रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तित्व भी कभी कभी या बहुधा चलते फैशनों की बाढ़ में बहकर स्वधर्म भूल बैठते हैं बाजार की मांग और दबाव में आकर वे एक ऐसे लेखन पर उतर आते हैं जिसका प्रयोग 'आत्म' की अभिव्यक्ति नहीं, बाज़ार की मांग होती है। इस कारोबार में वे अपनी मूल्यवान स्मृतियों को भी समय की अंध बाढ़ में बहा आते हैं। स्मृतियाँ जब कि कोरी स्मृतियाँ नहीं होतीं। उनमें कभी का एक एटीएम सचेत लोक अपनी साड़ी विरासतें लिए ठाठ मारता रहता है। सुमन चौरे का लेखन ऐसी ही मूल्यवान विरासतों और स्मितोयों से जुडा लेखन है।''

पुस्तक को पढ़ते हुए लगता है मानो सत्तर पिचहत्तर साल से सांस्कृतिक स्मृतियाँ हर समय उनके भीतर टहलती रहती हैं ।

डॉ. सुमन चौरे का लेखन ऐसी ही मूल्यवान विरासतों और उनकी बचपन की स्मृतियों से जुड़ा लेखन है जो पुस्तकाकार रूप में आया है। ये स्मृतियाँ भले ही व्यक्ति विशेष की स्मृतियाँ हैं लेकिन इन स्मृतियों में लोक की सामूहिक चेतना अपने विविध आयामों के साथ आती है चाहे फिर वह संयुक्त परिवार व्यवस्था की बात हो या तीज–त्योहारों की। सोलह संस्कारों की बात हो या नर्मदा मईया से जुड़े प्रसंगों की या फिर लोक गीतों, लोकोक्तियों और लोक बोलियों की बात। धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए मार्गदर्शक रहे संत सींगा जी जैसे गुरुओं की बात हो या फिर भ्रूण हत्या और पर्यावरण संरक्षण से सम्बंधित बात डॉ. सुमन चौरे निमाड़ी संस्कृतिक जीवन की आत्मा में उतरती हैं। अपने अनुभव बयाँ करती हैं। बचपन में जो देखा और आज के समय में समाज जीवन में आ रहे निरंतर बदलावों के कारण हो रहे आत्मघाती प्रसंगों को लेकर वे अपनी चिंताएं भी बयाँ करती हैं।

'लोक चिति' को उद्घाटित करने वाला अनूठा संग्रह है – निमाड़ का सांस्कृतिक लोक'। पुस्तक एक क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक थाती का बखान करती है फिर भी इसमें समूचे भारतीय समाज की सामूहिक चेतना के सजीव चित्र उकेरे गये हैं। 'पर्यावरण संरक्षण और विवाह मंडप' तथा 'निमाड़ी लोक साहित्य में कन्या का स्थान' जैसे लेख हमारे अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को संबोधित करते लेख हैं।

'पर्यावरण संरक्षण और विवाह मंडप' शीर्षक लेख में लोक परंपरा और संस्कारों को एक दूसरे का पूरक मानते हुए डॉ. सुमन चौरे लिखतीं हैं –

''विवाह मंडप का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो उसमें प्रकृति की हर वस्तु उपस्थित होती है। इसलिए हमारी समस्त चेतना प्रकृति के इर्द गिर्द ही घूमती रहती है। परम्पराओं के साथ लोक गीतों में इनके नाम ले लेकर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जाती है। इन गीतों में विविध वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है।''(वही, पृष्ठ 360)

''मध्य प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में विवाह कार्य का सम्पूर्ण विधान नवनिर्मित मंडप में ही सम्पादित किये जाते हैं। इस मंडप में जहां वनस्पति और औषधीय जड़ी बूटियों की पूजा की जाती है, वहीँ जैव विविधता के दर्शन भी होते हैं।'' (वही, पृष्ठ 360)

इस समय गाये जाने वाले लोकगीतों या कहें संस्कार गीतों में मंडप के निर्माण के लिए उपयोग में लायी गयी प्रत्येक वस्तु का नाम लेकर उसकी वंदना की जाती है –

ओऽ म्हारा हरिया मंडप मानऽ जडावऽ का रेऽ मंडवा
करूं थारी आरती
क्वारी जोऽ गौआऽ को गोबर मंगाया
नागारवेली पानऽ का तोरणऽ लगाया
गजऽ मोतियन का चौकऽ पुरायाऽ
जलऽ जमुना का कलशऽ भराया,
माई रेवा का कलशऽ भराया

नादंडऽ कपासऽ का बाटी बटाया
सुवरणऽ दीपक ज्योति गमकाया
करूं थारी आरती।

(भावार्थ – हे मेरे हरिया मंडप, तेरा श्रृंगार रत्न जड़कर किया गया है। तेरी आरती उतार रही हूँ। कुआरी गाय के हरे गोबर से मंडप की बूमी को लीपा गया। गज मुक्तों से चौक पुराया गया है। जमुना और नर्मदा माई के जल से कलश भरे गये है। नगरवेली पान का तोरण लगाया गया है। नांदण कपास की बत्ती बनायी गयी है। जिसको स्वर्ण दीपक में रखकर प्रदीप्त किया गया है। हे मंडप मैं तेरी आरती उतारती हूँ।)

इसी तरह एक और गीत में महिलायें गीत गाती हैं –

''हे वन के वृक्षों, मैं तुम्हें अपने मंडप में आने का निमंत्रण देती हूँ। मैंने आज तक तुम्हारी सेवा की है अब अवसर आया है कि तुम उपस्थित होकर हमारे मंडप को सोभायमान करें।''

इस गीत में जो मंडप बनाने , मंडप की प्राण प्रतिष्ठा करने और उसकी शांति के लिए उपयोग में लायी जाने वाली सामग्री का जिक्र किया गया है। डॉ. शांति जैन ने अपनी पुस्तक 'लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम' में ऐसे अनेक रीति रिवाजों का जिक्र किया है जिनमें विभिन्न पेड़ पौधों, नदियों, वनस्पतियों और यहाँ तक कि चाक पूजन, कौड़ी पूजन, कुआं पूजन, हल्दी, कलश पूजन, आदि के साथ साथ भुइयां भवानी (पृथ्वी को भवानी कहा गया है) के पूजन के समय गाये जाने वाले लोकगीतों की चर्चा की है।

दरअसल, भारतीय लोक चिति या लोक चेतना का निर्माण और विकास वेद के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और तुलसी के 'प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना' जैसे लोकानुसंधनों के प्रभाव में हुआ है। इसलिए यहाँ कोई भी वस्तु हिकारत योग्य या उपेक्षणीय नहीं है। सृष्टि के कण कण में पूज्य भाव से भारतीय समाज की लोक चेतना या लोक चिति के अन्तरंग का निर्माण हुआ है। डॉ. सुमन चौरे ने निमाड़ क्षेत्र की की लोक चेतना का ही उद्घाटन करके वास्तव में भारतीय समाज की लोक चेतना की ओर ही इंगित किया है।

लोक न शाश्वत और सनातन की उपेक्षा करता है और न समकालीन समस्याओं की। 'निमाड़ी लोक साहित्य में कन्या का स्थान' जैसा लेख वर्तमान में बेटियों की सुरक्षा और संरक्षा जैसी परिस्थिति के आलोक में लिखा गया है। इस लेख में डॉ. सुमन चौरे ने लोक मान्यता के आलोक में उन सामाजिक भ्रांतियों को तोड़ने का प्रयास किया है जिनमें कन्याओं के साथ भेदभाव देखने को मिलता है। निमाड़ क्षेत्र में पुत्र या पुत्री के जन्म के समय आस पडौस में सुचना देने के लिए क्रमश: थाली और सूप बजने का रिवाज है। इस सन्दर्भ में अपनी जिज्ञासा लेकर जब गाँव की वृद्ध महिलाओं से उन्होंने पूछा तो इसके पीछे की लोक दृष्टि अचंभित करने वाली लगी। उन्होंने लिखा है–

''सूप बजाने का अर्थ है, शांति और सौम्य तथा गहन गंभीर जीव का आगमन हुआ है। थाली बजाकर जीव के आगमन का अर्थ है शोर और उछलकूद करने वाला जीव। सूप द्योतक है कचरे को निकाल बहार करने वाले उपकरण का। कन्या सूपे की तरह घर के दु:ख दारिद्रय और कचरे को निकाल बाहर फेंकती है। कन्या लक्ष्मी और अन्नपूर्णा है। बिना कन्या के घर; घर नहीं, एक भुतहा घर लगता है।'' (वही, पृष्ठ 200)

पुस्तक में और भी बहुत कुछ ऐसा है जो हमें निमाड़ के लोक जीवन की सांस्कृतिक गलियों में बार बार टहलाता है और हर बार वह निमाड़ी लोकजीवन के कुछ ऐसे पक्षों के सामने लेजाकर खड़ा कर देता है जहां भारतीय लोक दृष्टि अपने पूरे गाम्भीर्य के साथ निमाड़ी लोक दृष्टि के साथ एकमेक होती दिखाई देती है।

– आई – 94, गोविन्दपुरम, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.)– 201013

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

पुस्तक समीक्षा

सूर्यांश का प्रयाण
कर्ण के पीड़ामय जीवन की काव्याभिव्यक्ति

– डॉ. प्रकाश बरतूनिया

पुस्तक विवरण–

कृति	:	सूर्यांश का प्रयाण
लेखक	:	महेश श्रीवास्तव
प्रकाशक	:	इन्दिरा पब्लिशिंग हाउस, अरेरा कॉलोनी, भोपाल
मूल्य	:	₹165/–
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

मध्यप्रदेश गान के रचयिता और वरिष्ठ पत्रकार श्री महेश श्रीवास्तव का हाल ही में प्रकाशित काव्य 'सूर्यांश का प्रयाण' अनूठी भाव–भूमि पर रचा गया है, जिसमें महाभारत के विलक्षण पात्र कर्ण के अवचेतन मन में जीवन और मृत्यु के संधि स्थल पर बने, भोगे गये यथार्थ के भावपूर्ण बिम्ब हैं। वरदान और शाप, पुरूषार्थ और अहंकार, पाप और प्रायश्चित, पीड़ा और प्रतिकार के द्वन्द्व में बीता कर्ण का अदुभुत जीवन आज के मनुष्य के जीवन में भी यदाकदा न्यूनाधिक प्रतिबिम्बित हो जाता है। नियति ने कर्ण के जीवन के साथ सहलाते हुए क्रूर खेल खेला। दिव्यता देकर दीन और दरिद्र को दानी, पुरूषार्थ देकर अहंकारी बना दिया। कुँआरी मां ने नदी में बहाया,स्वार्थी सत्ता ने अंगदेश का राजा बनाया,द्रोपदी ने अपमानित किया तो चीरहरण में साथ देने का पाप किया। अंतिम समय में पीड़ा और प्रायश्चित, असमंजस और आत्मग्लानि से भरा कर्ण का हृदय सबसे क्षमा याचना करते हुए कृष्ण द्वारा उसकी चिता को अग्नि देने और पाण्डवों द्वारा अस्थि विसर्जन की कामना करता है।

कुँआरी मातायें आज भी सन्तान के साथ वैसा ही व्यवहार करती हैं जैसा कुन्ती ने कर्ण के साथ किया और तिरस्कृत पुत्र का व्याकुल मन पूछ उठता है–

कहो कुन्ती, बताओ राजमाता
कहो अपराध मैंने क्या किया था
तुम्ही ने वास्तविक या शब्द मंत्रित
कुँआरे में प्रणय का सुख जिया था
कहो, अपराध तब किसने किया था।

और फिर अपनी मां से किये गये विक्षुब्ध हृदय के क्रूर प्रश्न से स्वयं लज्जित होकर अपना समर्पण व्यक्त करता है–

करोड़ों बार जन्मे कर्ण
जन्मे और मर जाये
अगर माँ को मिले सुख
और माँ निर्दोष कहलाये।

किन्तु मृत्यु पूर्व अपने पिता के बारे में जानने की व्याकुल उत्सुकता मार्मिक रूप से प्रगट हो उठती है

बता दो कौन मेरा देहदाता
मिले अवसर न मिल पाए कभी फिर
अदेखे पिता को क्षण भर निहारूं
करूं कल युद्ध अंतिम, पूर्व उसके
चरणरज् भाल पर उसकी लगा लूँ

सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होते हुए भी स्वयंवर में तिरस्कृत किये जाने से उत्पन्न प्रतिशोध भावना में कर्ण द्रोपदी के चीरहरण के समय अपशब्दों का प्रयोग करता है। आत्मग्लानि से भरा कर्ण का पीड़ित पुरूषार्थ बहुत ही कारुणिक ढंग से द्रोपदी से क्षमा करने या दण्ड देने की याचना करता है–

दिग्विजय का भाल पर टीका लगाये
दंभ की दुंदुभि बजाता
जीत कर संसार के हर युद्ध में भी

जन्म से हारा
तुम्हारा नहीं होकर भी तुम्हारा
यह अभागा
कर्ण तेरे द्वार पर याचक बना है
द्रोपदी
तू कर क्षमा या दण्ड दे
यह दान दाता भिक्षु
भीगे चक्षु
तेरे द्वार पर याचक बना है

महाभारत के युद्ध को भी वह चीरहरण के पापकृत्य के संदर्भ में ही देखता है–

युद्ध जैसे कर्ण अर्जुन का नहीं है
युद्ध जैसे राजसत्ता का नहीं है
युद्ध है
उन सब भुजाओं से, निबल उस चीर का
जो द्रोपदी के अंग से खींचा गया था
युद्ध है
उस नग्न जंघा से, उघाड़े एकनारी वक्ष का
जो भर दुपहरी, भर सभा
निबल हाथों को हटा
धृतराष्ट्र के अंधे नयन से
आंख भर देखा गया था।

चीरहरण में द्रोपदी के अनंत की सीमा तक बढ़ते हुए चीर और दु:शासन जैसे बलवान के थक कर गिरने की घटना उसे कृष्ण का स्मरण करा देती है। कृष्ण, जिनका चमत्कारी रूप उसने कुरू सभा में तब देखा था जब संधि प्रस्ताव लेकर गए कृष्ण को दुर्योधन ने बंदी बनाने का प्रयास किया था और प्रणम्य भाव से मन ही मन वह कह उठता है–

चरम आनंद का वह स्त्रोत
लेकिन धधकता ज्वालामुखी है
चरम कोमल, किरण के अंग होकर भी
अखण्डित वज्र तक जिसका ऋणी है
नहीं वह स्वप्न हो सकता नहीं
विश्वास करने योग्य भी वह सच नहीं है।

जीवन भर श्रेष्ठतम योद्धा सिद्ध होने और दुर्योधन के उपकार का बदला चुकाने भीषण युद्ध करते रहे कर्ण को युद्ध के पीछे छुपी राजपुरूषों की धरा और धन की अतृप्त लालसा और विराट होते उनके अहंकार का भी भान होता है–

राजपुरूषों के लिये तो युद्ध है
धरा, धन, ऐश्वर्य भूखी लालसा
शक्ति का पागल अहंकारी प्रदर्शन
एक हिंसक सुख, अबूझे काल का

चूँकि उसका पालन एक सूत परिवार में हुआ और दीन एवं दरिद्र परिवारों की विवशता एवं पीड़ा उसने देखी थी अत: सामान्य सैनिकों के लिये उसका करूणा भाव जागृत हो जाता है–

किन्तु, सैनिक
दीन और दरिद्र
भूख अपनी और अपनों की मिटाने
युद्ध है जिनका विवश व्यवसाय
जय-पराजय में न कुछ पाते
मृत्यु मिलती या असीमित घाव
इस घिनौने युद्ध के पश्चात्।

स्वयं के जीवन में भोगे हुए यथार्थ और देखी हुई सांसारिक विडम्बनाओं का स्मरण करते हुए उसमें दार्शनिक विचार का प्रवेश होता है और वह कह उठता है।

युद्धमय संसार शायद
हर जगह, हर ओर, हर नर
कर रहा हो युद्ध जैसे
कभी भीतर, कभी बाहर
स्वयं से, संसार से भी
स्वयं में संसार बनकर।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप सर्वस्व तक दान कर देने को तत्पर दानवीर कर्ण से जब इन्द्र कपट पूर्वक कवच कुण्डल का दान माँगता है तो कर्ण यह जानते हुए भी कि उसके प्राणों की रक्षा समाप्त हो रही है, दान तो कर देता है किन्तु उसका मन इन्द्र से पूछ बैठता है।

घृणित करते कर्म फिर भी दिव्य कैसे
हीनतम अपराध करते, पूज्य कैसे ?

कर्ण जब सेनापति बनता है और कुन्ती पहली बार उसे पुत्र कहकर अपने पाँचों पुत्रों के जीवन की भिक्षा माँगती है तो वह कहता है तुमने मुझे तुम्हारी कोंख जाया पुत्र कह दिया है अत: अब तुम्हारे छह पुत्र हो गये– मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारे पाँच पुत्र ही जीवित रहेंगे। अर्जुन को छोड़ कर मैं किसी अन्य को नहीं मारूंगा। या तो मैं मरूंगा या अर्जुन और तेरे शेष पाँच पुत्र ही जीवित रहेंगे।

वचन देता तुझे हूँ।

युद्ध के भी बाद
तेरे पुत्र पाँचों
पाँच ही जीवित रहेंगे
मात्र यह होगा
मिलेगा कर्ण अर्जुन की जगह
या फिर
अखण्डित पाँच पाण्डव ही रहेंगे।

किन्तु, युद्ध भूमि में घायल पड़े और मृत्यु के क्षण गिनते कर्ण के सामने एक ब्राह्मण भिक्षा मांगने आ जाता है तो पास में कुछ नहीं होने पर वह अपना स्वर्णमण्डित दांत तोड़कर दान करता है और अन्तिम समय में दान के बारे में भी जैसे एक दार्शनिक सत्य उसके मन में प्रगट होता है–

आह
लेकिन कौन किसको दे सका भिक्षा
सभी की देह भिक्षापात्र
सबके प्राण भिक्षा
उस अगोचर, उस अनन्त, अनाम प्रभु का
जीवधारी को दिया यह दान।

और जब ब्राह्मण भिक्षा प्राप्त करके आशीष देना चाहता है तो कृष्ण के प्रति भक्ति और पाण्डवों के

प्रति आसक्ति प्रगट हो जाती है–
दे रहे आशीष तो यह जोड़ देना
कृष्ण मेरी चिता को ज्वाला दिखायें
हो कुँआरी भूमि पर अंतिम क्रियायें
पाण्डव ही अस्थि गंगा में बहायें

यह काव्य रचना हर प्रबुद्ध साहित्य प्रेमी को भावपूर्ण आनन्द प्रदान करने वाली रचना है।

– समीक्षक– कुलाधिपति
अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
एमेजोन, फ्लिपकार्ट पर उपलब्ध

रास्ता इधर से भी है
(उपन्यास)

लेखक : अश्विनी कुमार दुबे
प्रकाशक : इंक पब्लिकेशन
प्रयागराज (उ.प्र.)
मूल्य : ₹250/–
प्रकाशन वर्ष : प्रथम संस्करण, 2022

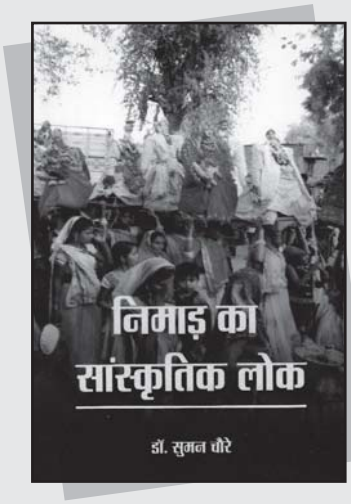

निमाड़ का सांस्कृतिक लोक
(लोक लेख संग्रह)

लेखक : डॉ. सुमन चौरे
प्रकाशक : इन्दिरा पब्लिशिंग हाउस,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल
मूल्य : ₹895/–
प्रकाशन वर्ष : प्रथम संस्करण, 2022

पुस्तक समीक्षा

सा नो माता भारती भूर्विभासताम्
भारत पर एक किताब

– प्रो. महेश दुबे

पुस्तक विवरण–

कृति	:	भारत इतिहास, संस्कृति और धर्म
लेखक	:	अश्विनीकुमार दुबे
प्रकाशक	:	सर्वत्र, एन इम्प्रिंट ऑफ मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल
मूल्य	:	₹299/–
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2023

भारत विविधिताओं का देश है। विविधिताओं में एकता का देश है। भारत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध है। इतिहास का संस्कृति और धर्म से बहुत गहरा सम्बन्ध है। भारतीय इतिहास के बारे में एक भ्रान्त धारणा यह है कि भारतीयों ने कभी भी स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में देखा और अनुभूत नहीं किया। एक अंग्रेज (शायद सर स्ट्रेची) का कथन है कि–

'The first and most essential thing to learn about India-that there is not and never was an India.'

इसका सीधा सा अर्थ यह निकाल लिया जाता है कि राष्ट्र की अवधारणा से अनभिज्ञ भारतीय कभी भी अपने इतिहास के प्रति जागरूक नहीं रहे। नई–दिल्ली में राष्ट्रपति भवन के सामने 'जयपुर स्तम्भ' के शिलालेख में जो अंकित है वह भारत की ऐतिहासिक समृद्धता, धार्मिक प्रफुल्लता और सांस्कृतिक गरिमा की और संकेतों में बहुत कुछ कहता सा प्रतीत होता है। इसका हिन्दी अनुवाद कुछ इस प्रकार होगा–

'विचारों में विश्वास / शब्दों में विवेक / कृतत्व में साहस / जीवन में सेवा/ ऐसा भारत महान हो।'

इसे लार्ड इरविन और सर एडवर्ड लुटियन्स ने अभिकल्पित किया था। इन शब्दों में गूंज रही है भारत की भारती। इसी विराट परिप्रेक्ष्य की विवेक दृष्टि को लेकर लिखी गई अश्विनीकुमार दुबे की कृति: भारत – इतिहास, संस्कृति और धर्म एक रचनात्मक प्रयास है। इन शब्दों में जो शाश्वत प्रतिध्वनियां हैं, उनके लिये कैसर–उल–जाफ़री के शब्दों में–

आसान नहीं उसको पल भर में बुझा देना
सदियों ने जलाई है जो शम्अ उसूलों की

पाषाण युग से लेकर आज तक के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों और परिवर्तन के क्रमिक सोपानों में विकसित होती हुई भारत की सांस्कृतिक सातत्यता और धर्म–चेतना को संयुक्त दृष्टि से विलेषित करती हुई यह कृति एक तटस्थ और निरपेक्ष प्रस्तुति है और वैचारिक सांश्लेषिकता जिसकी विशेषता है। लेखक की विचार–दृष्टि और प्रस्तुति तटस्थ और निरपेक्ष है।

लेखक का यह मानना है कि भारत की संस्कृति का स्पंदन एक जीवित और सतत प्रवाहमयी चेतना है, जो निरंतर समृद्ध और पुष्ट हो रही है। भारत की धर्म–अवधारणा विराट आध्यात्मिक विचार–दर्शन से श्रोत–प्रोत है जिसमें विश्व–बन्धुत्व की भावना समाहित है। अनावश्यक विस्तार और महिमा–मंडन से बचते हुए लेखक ने भारत के इतिहास के बारे में सटीक और संतुलित जानकारी दी है। संक्षिप्ता और सरलता इस कृति की उल्लेखनीय विशेषतायें हैं। भाषा सहज, सरल और संप्रेषणीय है। भारत के राज्यों के बारे में जानकारी देकर लेखक ने पुस्तक को शैक्षणिक दृष्टि से उपयोगी और प्रासंगिक बनाया है।

– 36/आर, महालक्ष्मी नगर
इंदौर–452010 (म.प्र.)

■

पुस्तक समीक्षा

प्रदक्षिणा मीमांसा

- प्रोफेसर डॉ. सरोज गुप्ता

पुस्तक विवरण-

कृति	:	प्रदक्षिणा (लोक गौरव की सांस्कृतिक परंपरा)
लेखक	:	अरुण कुमार शुक्ल
प्रकाशक	:	जनजातीय लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल
मूल्य	:	₹50/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2023

प्रदक्षिणा श्री अरुण शुक्ल द्वारा रचित भारतीय ज्ञान विज्ञान के गूढ़ रहस्यों एवं लोकजीवन के सांस्कृतिक पक्ष के वैभवशाली दर्शन को उजागर करने वाली ऐसी पुस्तक है जो बाल-वृद्ध-युवा सबके लिए पठनीय है। इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के केन्द्र बिन्दु यज्ञ, यज्ञवेदी, यज्ञाग्नि की प्रक्रिया के पश्चात् प्रदक्षिणा पर विस्तार से चर्चा की गयी है। मां श्रीमती क्रांति देवी शुक्ला को समर्पित यह पुस्तक आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक रुप से जीवन संचालन के साथ, कामनाओं के सत्व गुणों को पिरोने वाली है। मां के हृदय में प्रकृति भाव हिलोरें लेता है। अत: मां को समर्पित यह पुस्तक समग्र सृष्टि के लिए एक संदेश है। इस पुस्तक पर पिता आचार्य पं दुर्गाचरण शुक्ल जी ने पुत्र श्री अरुण शुक्ल को पुरोचना के रुप में आशीर्वचन दिया है जिसमें शाखा पर बैठे विहंगम शुक द्वारा प्रथम उड्डीयमान शिशु के उड़ान की परिकल्पना मनोहारी है इसीतरह 'जो बालक कहि तोतरि बाता, सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता' गोस्वामी तुलसीदास जी के मन के भाव प्रसन्नता प्रदान करते हैं। प्रधान सम्पादक डॉ धर्मेंद्र पारे जी की विषय के प्रति जिज्ञासा एवं सम्पादक श्री अशोक मिश्र जी के प्रदक्षिणा को लेकर विचार, भारतीय धर्म की बुनियाद पर गहन चिंतन ने ही अरुण शुक्ल को इस पुस्तक को रचने की प्रेरणा दी है।

ज्ञान की प्रमुख धाराओं - आगम और निगम में संसार का समस्त ज्ञान समाहित है। मनुष्य ही ज्ञान विज्ञान का केन्द्र बिन्दु है। लोक में मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण भुवन ही यज्ञवेदी है। यज्ञ दो शब्दों से मिलकर बना है। यत् +जू= यत् का अर्थ है गतिशील और जू: का अर्थ है आकाश। सृष्टि निर्माण के पूर्व आकाश सबजगह एक सा चेतन रुप में फैला था। चेतन तत्व में संकल्प उभरा तो गति और आगति सम्पन्न हुई। गति से क्षोभ, संकुचन, प्रसरण हुआ । आगति से सूक्ष्म विद्युत विभव उत्पन्न हुआ। विद्युत ऊर्जा ही आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि -इन तीनों से जू: - आकाश यत् अर्थात् सूक्ष्म प्रवहमान ऊर्जा उत्पन्न हुई। यत् और जू:- अर्थात यज्ञ के संयोग से सृष्टि निर्माण की यज्ञीय प्रक्रिया प्रारंभ हुई। मन, प्राण और वाक् के रुप में सम्पूर्ण सृष्टि का साक्षी यह संसार है। मन की क्रिया इच्छा, प्राणों की क्रिया तप और वाक् का व्यापार श्रम जो भी व्यक्ति समझता है और इसे सम्पन्न कराने की क्षमता रखता है, वही दक्ष, निपुण अन्तर्ज्ञानमय विवेक युक्त दक्षिणावान माना जाता है। स्ववशीय मन, प्राण और वाक् के साथ जब सृष्टि करता है तभी संसार प्रकट होता है। यज्ञ वेदी दक्षिणा- सविता की शक्ति है और यज्ञ की परिधियों की प्रदक्षिणा सविता की शक्ति को अर्जित करने की महत्वपूर्ण विधि को इस प्रदक्षिणा पुस्तक में वैज्ञानिक आधारों की पुष्टि सहित विस्तार से विवेचित किया गया है ।

वैदिक सृष्टि विज्ञान में अग्नि के संस्कार को यज्ञ कहा गया है। लोक व्यवहार में अग्नि पर सोम की आहुति को ही हम लोग यज्ञ कहा करते हैं । परन्तु जब अग्नि और सोम नहीं था, तब भी यज्ञ होता रहता था। सूर्य, चन्द्र, ऋतुएं सब यज्ञमय है। ज्ञान के उत्कर्ष से शक्ति और शक्ति के उत्कर्ष से ज्ञान का उत्कर्ष बढ़े, यह अवधारणा मानव

जीवन में अनन्त काल से प्रवहमान है। शरीर की प्राण शक्ति,हृदय की उत्साह शक्ति, बुद्धि की ज्ञान शक्ति से सामुदायिक शक्ति प्राप्त होती रहे। वेदों में निहित ज्ञान को हृदयंगम करने के उद्देश्य से तथा मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए कुछ परम्पराओं की सृष्टि की गयी है। देवभाषा संस्कृत में ज्ञान विज्ञान का अथाह महासागर कथाओं के माध्यम से हमारे समाज में विभिन्न रुपों में प्रचलित है। प्रदक्षिणा का विवेचन पुस्तकाकार रुप में ग्रंथों में अलग से कहीं नहीं मिलता। एक बड़े अभाव की पूर्ति इस पुस्तक के माध्यम से श्री अरुण शुक्ल ने की है। भारतीय लोक के अद्भुत खजाने को एवं ज्ञान रुपी मणि माणिक्य को जो सहस्त्रों वर्षों से हमारे ज्ञान विज्ञान का हिस्सा रहे जिनका संरक्षण हिंदी भाषा में करके लेखक ने विषय को गहराई से समझाकर प्रदक्षिणा शब्द के अर्थ व औचित्य के समग्र विकास को लिखा है। ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए भाषा की महती भूमिका सर्वविदित है। आपने इस अमूल्य ज्ञान को सहज सरल,जनभाषा हिन्दी में प्रचारित प्रसारित करने के लिए जो प्रयास किया, वह वरेण्य है।

वैश्विक – शक्ति या अग्नि का यज्ञ स्वरूप वेदों पुराणों धर्म ग्रंथों में उपलब्ध है इस विज्ञान को समझने के लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा। जिसप्रकार विज्ञान के लिए प्रयोगशाला आवश्यक है । उसी प्रकार समस्त सृष्टि की यज्ञमय संस्कृति को समझने के लिए वैदिक मंत्रों के साथ यज्ञशालाओं में यज्ञ प्रक्रिया को समझना भी आवश्यक है। इस पुस्तक में रचयिता ने प्रदक्षिणा का अर्थ स्पष्ट करते हुए वृक्ष, वनस्पति,नदी, पर्वत नागदेव आदि की महत्ता बताते हुए प्रदक्षिणा की संस्कृति को समझाया है। जलतत्व प्रधान देवी देवताओं की प्रदक्षिणा–नदीमह गंगा,नर्मदा प्रदक्षिणा का महत्व व विधान हमारे यहां है। कामद गिरि,गोवर्धन,गिरि पर्वत और उनके उत्सव को गिरीमह कहकर,लोक देवता और उनका उत्सव यक्षमह और नाग देवता और उनके उत्सव को नागमह कहकर प्रदक्षिणा का वर्णन धर्म ग्रंथों तथा वांग्मय के आधार पर विभिन्न उद्धरणों द्वारा स्पष्ट किया है। हमारे यहां प्रतिदिन पूजा आरती के बाद यज्ञ हवन के बाद प्रदक्षिणा करना अनिवार्य बताया गया है।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे।

अर्थात् हे प्रभु, मैंने अपने पूरे जीवन में, अपने पूर्व जन्म से ही बहुत से पाप किए हैं। मैं आपसे अपनी प्रदक्षिणा यज्ञ तथा भगवान के चारों ओर घूमने के हर कदम पर उन्हें नष्ट करने के लिए विनती करता हूं। लोक जीवन में प्रदक्षिणा का अर्थ है भगवान के चारों ओर गोलाकार आकृति में घूमना। ये एक संस्कृत शब्द है तथा इसका उपयोग शास्त्रों में वर्णित है। बिना केंद्र बिंदु के हम वृत्त नहीं बना सकते। प्रभु हमारे जीवन का केंद्र, स्त्रोत और सार हैं। हम उसे अपने जीवन में केंद्र बिंदु के रूप में पहचानते हुए प्रदक्षिणा करके इसे स्वीकार करते हैं, हम अपने दैनिक कार्यों को करते हैं । यही प्रदक्षिणा का महत्व है। इष्टदेव की मूर्ति या कहीं–कहीं देवायतन के चारों ओर वृत्ताकार इस प्रकार घूमना जिसमें देव या मंदिर अपने दक्षिण भाग में रहे, प्रदक्षिणा कहलाता है। यह प्रदक्षिणा नमस्कार के साथ एक 'उपचार' है जिसे षोडश उपचारों में अन्यतम माना जाता है। प्रदक्षिणा के अंत में प्रणाम अवश्य करना चाहिये। मंदिर में पूजा अर्चना के बाद जब हम भगवान की मूर्ति की परिक्रमा करते हैं तब भाव रहता है कि पूरे ब्रह्मांड की दैवीय ऊर्जा गर्भस्थान के शिखर पर विद्यमान धातु के कलश से प्रवाहित हो कर ईश्वर की मूर्ति के नीचे दबाई गई धातु पिंड तक जाती है और धरती में समा जाती है। गर्भस्थान की प्ररिक्रमा के दौरान हमें इस ब्रह्मांड़ीय उर्जा से जुड़ने विद्युतीय ऊर्जा को आत्मसात् करने से लाभ मिलता है।

विश्व संस्कृति का मूल वेदों में विद्यमान है। वैदिक ऋषियों को वेद विद्या,सृष्टि विद्या अभीष्ट थी। इन विद्याओं का ऋषियों ने अनन्त सृष्टि की तरह अपरिमित विस्तार किया है, जो अन्तहीन है। वेदों में सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्य को 'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्' के रूप में प्रकट किया गया है। ऋग्वेद के पहले ही मंत्र में 'अग्नि मीले पुरोहितम्' कहकर अग्नि को यज्ञ का देवता, पुरोहित, ऋत्विक, होता, और रत्नों का आधान करने वाला कहा गया है। विश्व में जो समष्टि प्राण ,जीवन और चेतना है वही तीन रुपों में अभिव्यक्त है। अग्नि एक है उसमें तीन ज्योतियों का सम्मिलित रुप विद्यमान है। जैसे–आदित्य,वायु ,अग्नि। मन,प्राण, वाक्। अव्यय, अक्षर, क्षर। इन्हें ही प्राण ,अपान, व्यान नामक तीन अग्नियां कहा जाता है जो यज्ञ की तीन वेदियों – गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवहनीय के रुप में प्रज्वलित रहती हैं। शुचि, पावक और पवमान अग्नि ही ब्रह्माग्नि, देवाग्नि और भूताग्नि हैं। प्राण और अपान के मध्यस्थ व्यान से अग्नि जागृत होती है। इस प्रकार सनातन काल से सम्पूर्ण सृष्टि की समृद्धि के लिए तप,यज्ञ,साधनामय जीवन जीते हुए ऋषि मुनियों ने समाज हित में ज्ञान को जन सामान्य के बीच प्रचलित करने के उद्देश्य से कुछ परम्परायें बनायीं। सम्पूर्ण सृष्टि ही यज्ञमय है। सम्पूर्ण सृष्टि में अहर्निश दृश्य अदृश्य रुप में यज्ञ प्रक्रिया सतत् क्रियमाण है। इस यज्ञ प्रक्रिया से जन सामान्य कैसे जुड़े, स्थूल यज्ञ मंत्रोच्चार के साथ करने, यज्ञ पश्चात् प्रदक्षिणा करने से जन्मजन्मांतर के पापों के क्षय

की बात कहकर साधारण से साधारण व्यक्ति को ज्ञानवान बनाने के संस्कारों के साथ प्रदक्षिणा करने का प्रयास, चिंतन मनन ऋषि मुनियों की देन है। वैदिक ऋषियों का अखण्ड, अपरिमित ज्ञान का अनन्त प्रकाशबोध लोक में जागृत चैतन्य, परम्परागत रुप में प्रवहमान रहे। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से सबको लाभ मिले यह व्यवस्था हमारे यहां इस पुण्यधरा भारत की विशेषता रही है। अक्षर ज्ञान के बिना भी व्यक्ति इस सनातन परम्परा से जुड़े । गूढ़ और रहस्यात्मक बातों को सरलता के साथ समझ सके। मनुष्य की उन्नति, प्रगति, सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए ऐसे तकनीकी आयाम प्रस्तुत किए जिससे उनका गूढ़ रहस्यात्मक ज्ञान जन-जन में सहजता से प्रतिष्ठित होता रहे।

प्रदक्षिणा की संस्कृति सनातन काल से प्रवहमान है। भगवान शिव व माता पार्वती की प्रदक्षिणा करके गणेश जी प्रथम पूज्य बने। जामवंत ने वामन अवतार के समय बलि को बांधते समय अपने शरीर को इतना बड़ा कर लिया था कि दो घड़ी में सात प्रदक्षिणा दौड़कर कर ली थी। हनुमान जी जब सूर्यदेव से विद्या प्राप्ति के लिए पहुंचे तब उन्होंने देखा कि सूर्यदेव दिन भर फिरा करते हैं। सारे संसार को देखा करते हैं इसप्रकार एक ही पृथिवी प्रदक्षिणा में हनुमान जी महापंडित हो गये। वृक्षों, पर्वतों, नदियों ,मंदिरों, देवस्थानों की परम्परा सर्वविदित है। यह पुस्तक सनातन धर्म का समग्र तेजपुंज प्रदक्षिणा का मर्म, उद्देश्य, लक्ष्य सब कुछ पाठकों को एक साथ मिलेगा। यह पुस्तक हर घर के लिए संग्रहणीय है । सृष्टि व यज्ञविज्ञान, धर्म, कर्म, ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय इस पुस्तक में है। यज्ञ संस्कृति की रक्षा के लिए किया गया श्री अरुण शुक्ल जी का यह प्रयास सराहनीय है। अनन्त शुभकामनाएं

- लेखिका, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पं दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
सागर, म.प्र.

पानी

(कविता संग्रह)

लेखक	:	चेतन औदिच्य
प्रकाशक	:	सौरभ पब्लिकेशन, उदयपुर (राज.)
मूल्य	:	₹150/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

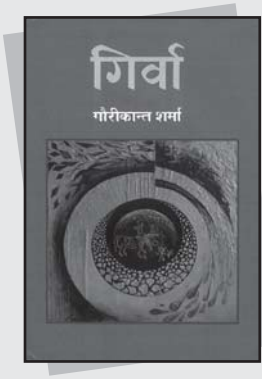

गिर्वा

(कहानी संग्रह)

लेखक	:	गौरीकान्त शर्मा
प्रकाशक	:	के.एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य	:	₹200/-
प्रकाशन वर्ष	:	प्रथम संस्करण, 2022

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

विरासत को सहेजता महोत्सव

संगीत धरोहर के रूप में हमें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली है। भारतीय संगीत विश्व में प्राचीनतम है और यह सदियों की दासता के बावजूद, अपनी श्रेष्ठता से बाहरी लोगों के शासन के बावजूद इसकी परिपक्वता, गहराई एवं निष्ठावान कलाकारों के समर्पण के कारण बिखरने नहीं पाई।

तबला, पखावज में चक्रदार का विशेष महत्व है। चक्र शब्द का अर्थ है घूमना, अर्थात तिहाई सहित जो बोल समूह तीन बार चक्र लगाते हुए ताल के कम से कम दो चक्र (आवृति) पूरी करते हुए अंतिम 'धा' सम पर आए तो उसे चक्रदार कहा जाएगा। अथवा दूसरे शब्दों में किसी तिहाई सहित बोल समूह को तीन बार बजाने पर जब अंतिम 'धा' सम पर समाप्त होता है तो उसे चक्रदार कहते हैं और इसे चक्रदार टुकड़ा तथा चक्रदार परण आदि नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। चक्रदार के मुख्य तीन भेद हैं – साधारण चक्रदार, फरमाईशी चक्रदार एवं कमाली चक्रदार। जो अवनद्ध वाद्य के कलाकार अपने प्रदर्शन में महान गुरुओं द्वारा निर्मित रचना को बहुत ही विशेष रचना के तौर पर प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में कहना अनुचित नहीं होगा की भाषा और गणित के विविध स्तरों के परिमाणों के संयोग एवं रचनाकार की निर्मिति–क्षमता के अनुसार विविध चक्रदार की रचना हुई है। जिसका अनुसरण वर्तमान में तंत्र वादक के कलाकरों में भी सुनने को मिल रहा है। सितार, सरोद, वीणा, संतूर, बांसुरी इत्यादि के कलाकार भी अपने वादन में चक्रदार बहुत ही सौंदर्यात्मक रूप में समावेश किया है, जिससे उनके कला में बढ़ोतरी ही हुई है और श्रोताओं द्वारा भी काफी पसंद किया जा रहा है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से देखें तो चक्रदार का मतलब ही होता है परिक्रमा। किसी पवित्र स्थकल की परिक्रमा करनी हो तो भी 3 बार करने का विधान है। भारतीय संस्कृति में तीन का विशेष महत्व होता है, चाहे वो इलेक्ट्रान प्रोटोन या न्यूट्रॉन हो या फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश। भोलेनाथ का प्रिय अस्त्र त्रिशूल भी तीन सिरों का है। त्रिशूल तीन गुणों सत्व, रज और तम का परिचायक है। इन तीनों के बीच सांमजस्य बनाए बगैर सृष्टि का संचालन कठिन है। इसलिए शिव ने

नादऑरा संस्था के अध्यक्ष डॉ. कुमार ऋषितोष के द्वारा 'नाद योग महर्षि रत्न' सम्मान से सम्मानित पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज, साथ में साध्वी भगवती सरस्वती जी, पं हरीश तिवारी, आचार्य जागृति, शशिप्रभा तिवारी एवं अन्य

त्रिशूल रूप में इन तीनों गुणों को अपने हाथों में धारण किया। इसे रचना, पालक और विनाश के रूप में देखा जाता है। इसे भूत, वर्तमान और भविष्य के साथ धरती, स्वर्ग तथा पाताल का भी सूचक माना जाता है। यह दैहिक, दैविक एवं भौतिक ये तीन दु:ख, त्रिताप के रूप मे जाना जाता है। साथ ही देवियां भी तीन लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती हैं। उसी प्रकार तबला, पखावज एवं नृत्य के विशेष रचनाओं में अंक 3 का विशेष महत्त्व है, जो जीवन दर्शन से प्रेरित है। जो चक्रदार में विभिन्न लयकारी एवं काव्य युक्त रचनाओं में परिलक्षित होता है।

सांस्कृतिक संरक्षण, संवर्धन एवं ज्ञानवर्द्धधन हेतु समर्पित संस्था 'नादऑरा' संस्था के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. कुमार ऋषितोष स्वयं उचकोटी के कलाकार, लेखक, शिक्षाविद,आयोजक एवं गुरु के रूप में कला जगत में 25–28 वर्षों से सेवा कर रहे हैं। उनका कहना है की तबला, पखावज एवं नृत्य में प्रयुक्त विशेष एवं दुर्लभ रचनओं का सम्मान करते हुए 'चक्रदार महोत्सव' की संकल्पना की गयी है जो अभी तक इस तरह का उत्सव हमेशा से प्रतीक्षित रहा है। क्योंकि गायन विधा से सम्बंधित विविध कार्यक्रम का आयोजन सदैव होता आ रहा है। जैसे मल्हार उत्सव, बसंत उत्सव, कजरी महोत्सव, ठुमरी उत्सव, भक्ति उत्सव, ध्रुपद महोत्सव इत्यादि।

परमार्थ निकेतन के गंगा घाट पर डॉ. कुमार ऋषितोष द्वारा संयोजित एवं संचालित 'रिद्म डिवाइन' – तबला पर डॉ. ऋषितोष, मृदंग पर मनोज सोलंकी, गायन पर डॉ. रेखा मिश्रा, परकशन पर नीरज कुमार, बांसुरी पर सतीश पाठक, सारंगी पर नफीश अहमद

गायन पर पं. हरीश तिवारी, तबला पर डॉ. कुमार ऋषितोष, प्रबुद्ध श्रोता में पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज, मोरारजी योग संस्थान के निदेशक डॉ ईश्वर बसवराड्डी एवं ऋषि कुमार गण

तबला एवं पखावज में चक्रदार एक विशेष रचना है, चक्रदार का उद्गम स्रोत तिहाई है। देखा जाय तो तिहाई का ही बड़ा और विकसित रूप चक्रदार है, जो साधारण चक्रदार, फरमाइशी चक्रदार, कमाली चक्रदार एवं नौहक्का में इस रचना का वृहत रूप देखने को मिलता है। वर्तमान समय में सांगीतिक प्रदर्शन में शायद ही कोई कलाकार चक्रदार से अछूता रहा हो। तंत्र वाद्य के कलाकार हो या गायन विधा के जाने अनजाने में इसका प्रयोग अवश्य करते हैं। इस आयोजन से विशेषकर तबला एवं पखावज की रचनाओं को विशेष बल प्राप्त तो हुआ ही है, विविध घराने की सार्थकता के साथ ही अपार प्रसिद्धि के साथ कई नए संभावनाएं एवं नयी दिशा भी प्राप्त हुई है।

ग़ौरतलब है कि संगीत एवं योग के उन्नयन हेतु समर्पित राष्ट्रीय संस्था 'नादआॅरा' गत 17 वर्षों से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समारोह विभिन्न उत्सवों पर आयोजित करती आ रही है। जिसमें बनारस घराने के मूर्धन्य तबला सम्राट पंडित अनोखे लाल मिश्र जी एवं पंडित छोटेलाल मिश्र जी को संगीतमय श्रद्धांजलि प्राचीन विरासत को संरक्षित और लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से प्रतिबद्ध है। संगीत कार्यशालाएं (स्लम, अनाथ, निरीक्षण गृह), संगीत समारोह (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय), वेबिनार (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय), शताब्दी वर्ष, अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस, विश्व संगीत दिवस, दो देशों की संगीत धाराओं को जोड़ने के उद्देश्य से आयोजित 'अंतर्राष्ट्रीय इंडो–जैज कॉन्सर्ट', चक्रदार महोत्सव और पुरस्कार समारोह आदि। इन उत्सवों और वेबिनारों के आयोजन के दौरान संस्था ने समाज के पिछड़े समूहों के युवाओं को निरंतर प्रशिक्षण दिया है। कार्यक्रम में देश के गणमान्य कलाकारों ने इस मंच की शोभा बढ़ाई है, संस्था ने उन्हें सम्मानित भी किया है। वहीँ उदीयमान एवं गुमनाम कलाकारों को संस्था ने मंच भी प्रदान किया है। कोविड–19 के प्रकोप के बाद, संस्था ने समय की मांग को महसूस किया और देश के युवाओं को अपने उद्देश्य कि प्राप्ति के लिए संगीत और योग के प्रसिद्ध कलाकारों और योगियों के सहयोग से ज्ञान प्रदान करने के लिए डिजिटल मार्ग अपनाया और समाज में अवसरों के नुकसान और वित्तीय तनाव के कारण उन्हें अवसाद से बचाया।

उल्लेखनीय है कि गत वर्ष से 'चक्रदार महोत्सव' खास चर्चित रहा है। इस महोत्सव का उद्देश्य तबला एवं पखावज की पारम्परिक एवं दुर्लभ रचना का सम्मान करते हुए इसकी नींव रखी गयी थी। कहना अनुचित नहीं होगा संगीत के इतिहास में अवनद्ध वाद्य पर पहली बार ऐसा महोत्सव देखने को मिला जो आज़ादी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के विशेष सहयोग से नादआॅरा संस्था ने इसे भव्यता प्रदान किया। गौरतलब है कि इस आयोजन से जहाँ दुर्लभ अवनद्ध वाद्य पखावज की थाप से महोत्सव गुंजायमान हुआ, वहीं तबला वादन के विभिन्न घरानों की भी खुश्बू देखने को मिली, जिसमें पंजाब, दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रुखाबाद एवं बनारस इत्यादि तबला के घरानों को एक ही मंच पर सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जो अपने आप में अलग विविधता लिए हुए है। साथ ही शहनाई जैसे अति दुर्लभ और मंगल वाद्य से श्रोतागण स्वर वर्षा और लय के सागर में आकण्ठ डुबकी लगाते रहे।

दृष्टिगोचर है कि चित्रकूट में सांस्कृतिक विविधता, नए वातावरण के निर्माण हेतु उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के संयुक्त तत्वाधान में रामघाट घाट मंदाकिनी नदी के तट पर विशुद्ध शास्त्रीय संगीत का दो दिवसीय राष्ट्रीय 'चक्रदार महोत्सव' का भव्य

चक्रदार महोत्सव में मुख्य अतिथि स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज द्वारा मोरारजी देसाई योग संस्थान के निदेशक डॉ. ईश्वर वी. बसवराड्डी 'नाद योग वाचस्पति' सम्मान से सम्मानित साथ में संस्था के अध्यक्ष डॉ कुमार ऋषितोष, पं हरीश तिवारी

रामघाट, मन्दाकिनी तट पर
चित्रकूट में चक्रदार महोत्सव के उपलक्ष्य पर श्री संजीव शंकर एवं श्री अश्वनी शंकर (शंकर बंधु) शहनाई पर राग मारू बिहाग की प्रस्तुति देते हुए

आयोजन हुआ तो वहीं देवभूमि ऋषिकेश में नए सांस्कृतिक विविधता एवं स्वच्छता संकल्प (नमामि गंगे) एवं संवर्धन हेतु 'परमार्थ निकेतन' के संयुक्त तत्वाधान में परमार्थ निकेतन के गंगा घाट पर दो दिवसीय 'चक्रदार महोत्सव' आकर्षण का केंद्र रहा। खासकर तपोवन में देवी संगीत आश्रम और दिल्ली के त्रिवेणी सभागार में यह महोत्सव संगीतज्ञों एवं रसिक श्रोताओं में विशेष उत्साह और चर्चा बना रहा।

'नादऑरा' एवं 'परमार्थ निकेतन' के संयुक्त तत्वाधान में परमार्थ निकेतन के गंगा घाट पर आयोजित 'जी20 शिखर सम्मेलन' एवं 'आज़ादी के अमृत महोत्सव' के उपलक्ष्य पर भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के विशेष सहयोग से देवभूमि ऋषिकेश में नए सांस्कृतिक विविधता एवं स्वच्छता संकल्प (नमामि गंगे) एवं संवर्धन हेतु 15 एवं 16 मार्च 2023 को दो दिवसीय 'तबला महर्षि पंडित अनोखे लाल मिश्र एवं पंडित छोटेलाल मिश्र की संगीतमय श्रद्धांजलि'- 'चक्रदार महोत्सव' का भव्य आयोजन हुआ। कार्यक्रम का उद्घाटन मुख्य अतिथि रहे परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष एवं योगीराज संत शिरोमणि स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज ने दीप प्रज्ज्वलन करके किया। इस अवसर पर स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज के आध्यात्मिक श्रेष्ठता एवं प्रकृति तथा संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन एवं स्वच्छता हेतु उनके द्वारा किये गए संकल्पित प्रयास को देखते हुए नादऑरा संस्था द्वारा इन्हे 'नाद योग महर्षि रत्न सम्मान' से सम्मानित किया गया। यह सम्मान दिव्य एवं भव्य गंगा आरती के पश्चात नादऑरा के अध्यक्ष डॉ. कुमार ऋषितोष द्वारा अंग वस्त्र एवं स्मृति चिन्ह के साथ प्रदान किया गया। इस अवसर पर विशाल जनसमूह के साथ, आध्यात्मिक विचारक एवं प्रेरक साध्वी भगवती सरस्वती जी, मोरारजी योग संस्थान के निदेशक डॉ. ईश्वर वी. बसवराड्डी, किराना घराना के प्रसिद्द गायक पंडित हरीश तिवारी, आचार्य दीपक, आचार्य जागृति, शशिप्रभा तिवारी इत्यादि अन्य गणमान्य उपस्थित थे।

परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी अपने सन्देश में कहा कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य कला एवं संगीत की सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण संवर्धन एवं कला प्रेमियों के बीच कलाओं के आदान-प्रदान के माध्यम बनाना है। भारत, संस्कृति और संस्कारों से समृद्ध राष्ट्र है, भारत की सांस्कृतिक विरासत ही भारत की पहचान है क्योंकि अपनी संस्कृति और संस्कारों से मूल और मूल्यों से जुड़कर ही स्वस्थ, सशक्त और समृद्ध समाज का निर्माण किया जा सकता हैं। संगीत एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो शोर से दूर हमें शान्ति की ओर लौटने का संदेश देता है। जिससे मानसिक व्याधि और तनाव दूर होता है तथा शांति व सद्भाव में वृद्धि होती है। सात्विक संगीत सुनने से मन को शान्ति और शक्ति मिलती है। संस्कृति को समर्पित और संरक्षक ऋषितोष जी स्वयं एक अच्छे कलाकार हैं उनके द्वारा आयोजित चक्रदार महोत्सव' कलाकारों का विशुद्ध सांगीतिक यज्ञ है, जो भारत की सांस्कृतिक विरासत को अछुण्ण बनाये हुए है। ऐसे आयोजनों के लिए इन्हे बहुत बधाई एवं आशीर्वाद। आप ऐसे आयोजन निरंतर जारी रखें, मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ है।

कार्यक्रम के प्रथम दिवस का शुभारम्भ डॉ. कुमार ऋषितोष द्वारा संयोजित एवं संचालित बहुचर्चित 'रिद्म डिवाइन' की प्रस्तुति से किया गया। इस प्रस्तुति में लुप्त हो रही प्राचीन मन्त्रों एवं विभिन्न छंदों के माध्यम से कलाकार की अपनी सृजन क्षमता के अनुसार

नया स्वरुप देखने को मिला। कार्यक्रम की शुरुआत राग– मारवा में निबद्ध गणेश स्तुति एवं महामृत्युंजय मंत्र जो विलम्बित तीनताल एवं लक्ष्मी ताल में निबद्ध थी से की गई। तत्पश्चात राग शंकरा एवं देश में दुर्गा स्तुति, विभिन्न जातियों का प्रयोग, विभिन्न चक्रदार के प्रकारों के साथ वादन में गणेश परण, सरस्वती परण, महेश्वर सूत्र एवं दक्षिण भारत के मोहरे–कोरवे का समावेश भी इस कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण था जो बरबस गुणी श्रोताओं के साथ आम श्रोता भी खींचे चले आते हैं एवं साथ में विभिन्न लयात्मक संवाद भी। भाग लेने वाले कलाकार थे तबला पर डॉ. कुमार ऋषितोष, पुणे से आए मृदंग पर मनोज सोलंकी, गायन पर डॉ. रेखा मिश्रा, परकशन पर हिसार से नीरज कुमार, बांसुरी पर सतीश पाठक, सारंगी पर दिल्ली से नफीश अहमद आदि सभी कलाकारों कि अपनी–अपनी प्रस्तुति में दर्शकों को अपार संभावनाएं एवं दिशा देखने को मिली। दर्शकगण लय एवं स्वर लहरियों के आकंठ गंगा में अंत तक बारम्बार डूबते उतराते रहे। कार्यक्रम का अगला आकर्षण सुप्रसिद्ध मृदंगाचार्य पंडित पागल दास जी के शिष्य डॉ. संतोष नामदेव के सुमधुर मृदंग वादन से हुआ। आपने अपने वादन चारताल में रखा। डॉ. संतोष नामदेव ने चरताल में अपने गुरु से प्राप्त कई अच्छी सुंदर एवं दुर्लभ रचनाओं को बजंत एवं पढंत के साथ प्रस्तुत कर दर्शकों का मन मोह लिया। खासकर उनकी प्रस्तुति में फरमाइशी चक्रदार के विभिन्न प्रकारों को नए अंदाज में सुनने को मिली जो दुर्लभ था। आपके साथ सूझबूझ संगत सारंगी पर श्री नफीस अहमद एवं हाथ पर ताल से साथ दे रहे थे आपके शिष्य एवं पुत्र श्री सत्येन्द्र नामदेव। कार्यक्रम का द्वितीय दिवस युवा प्रतिभाशाली सुरजीत सिंह एवं बसंत सिंह का तबला जुगलबंदी कार्यक्रम हुआ। दोनों के वादन में अच्छी तैयारी के साथ सूझबूझ भी है। पेशकार, कायदा, बाँट, गत, फर्द के प्रस्तुति के साथ फरमाइशी चौपल्ली चक्रदार दर्शकों को काफी पसंद किया गया। इन दोनों के वादन में पंजाब, फर्रुखाबाद और बनारस घराने की खुश्बू देखने की मिली जो प्रशंसनीय था। सम्वादिनी पर सुमीत मिश्रा ने कुशलतापूर्वक सहयोग प्रदान किया।

कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण प्रसिद्द गायक भारत रत्न पंडित भीमसेन जोशी के प्रिय शिष्य पंडित हरीश तिवारी ने राग यमन में विलम्बित ख्याल 'ऐ पिया बिन कैसे कटे रतिया' जो झपताल में निबद्ध था एवं तीनताल में द्रुत रचना 'दर्शन दे हो शंकर महादेव' गाकर श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया। राग के स्वरों की मर्यादित बढ़त, शुद्धता को कायम रखते हुए तान की अद्भुत तैयारी आपके गायन की विशेष प्रतिभा है। तत्पश्चात पंडित हरीश तिवारी ने अपने गायन का समापन पंडित भीमसेन जोशी जी के प्रिय भजन जो भजे हरी को सदा से समापन किया। आपके साथ कुशल एवं सूझबूझ संगत तबला पर डॉ. कुमार ऋषितोष एवं सम्वादिनी पर सुमीत मिश्रा ने सुमधुर प्रदान किया।

कार्यक्रम के मध्यांतर में दिल्ली से पधारे मोरारजी देसाई योग संस्थान के निदेशक डॉ. ईश्वर वी. बसवराड्डी को 'नादऑरा' द्वारा योग दर्शन एवं योग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान का सम्मान करते हुए 'नाद योग वाचस्पति सम्मान' से सम्मानित किया गया। यह सम्मान परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी के कर कमलों द्वारा अंग वस्त्र एवं स्मृति चिन्ह के साथ प्रदान किया गया। मोरारजी देसाई योग संस्थान के निदेशक डॉ. ईश्वर वी. बसवराड्डी ने कहा कि 'नादऑरा' एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था है जो संगीत एवं योग को साथ में लेकर कार्य कर रही है। संगीत एवं योग दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का कार्य मानव जीवन में स्वस्थ रखना है, संस्कार वर्धन करना है। योग एवं संगीत भारत के संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसलिए भारत को विश्व गुरु भी कहा गया है। मैं डॉ. ऋषितोष जी को वर्षों से जानता हूँ इनका कला के प्रति समर्पण को देखते हुए 'चक्रदार महोत्सव' के भव्य आयोजन हेतु इन्हे बधाई एवं साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के सदस्य एवं दिव्यांग विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष एवं चित्रकूट में चक्रदार महोत्सव के स्थानीय संयोजक प्रोफेसर गोपाल कुमार मिश्र ने बताया कि चित्रकूट संगीत एवं कला के क्षेत्र में प्राचीन काल से बहुत ही संपन्न रहा है किंतु वर्तमान में शास्त्रीय संगीत के बड़े आयोजनों के ना होने के कारण कहीं न कहीं इस क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत की उपेक्षा हुई है। इस कमी को पूरा करने के लिए नादऑरा संस्था के अध्यक्ष डॉ. ऋषितोष जी के प्रयास से यह आयोजन किया जा रहा है। डॉ. कुमार ऋषितोष जी स्वयं एक उत्कृष्ट तबला वादक, शिक्षाविद, लेखक और संगीत चिंतक हैं नादऑरा के द्वारा ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन हेतु निरंतर प्रयासरत रहते हैं! इस कार्यक्रम का उद्देश्य है कि जैसे खजुराहो महोत्सव, तानसेन महोत्सव, मैहर में आयोजित संगीत महोत्सव के कारण देश और दुनिया के जाने माने संगीतकार इन स्थानों के सांगीतिक महत्ता को जानते हैं ऐसे ही यदि चित्रकूट में ऐसे आयोजन होते रहेंगे जिसमें संगीत जगत के लब्ध प्रतिष्ठित कलाकारों को आमंत्रित करके उनकी प्रस्तुतियां कराई जाएं तो निश्चित रूप से इससे इस क्षेत्र में एक सांस्कृतिक वातावरण का सकारात्मक निर्माण होगा। कलाकारों के मध्य कलाओं के आदान–प्रदान का एक सुगम मार्ग बनेगा और बाहर से आने वाले कलाकार चित्रकूट और विशेषकर बुंदेलखंड की सांस्कृतिक एवं सांगीतिक धरोहरों से भी परिचित होंगे और कहीं न कहीं संगीत की दृष्टि से चित्रकूट को वैश्विक पटल पर एक स्थान भी मिलेगा।

आईसीसीआर के निदेशक एवं मुख्य अतिथि श्री वाय एल राव द्वारा नाद रत्न सम्मान से सम्मानित पंडित भोलानाथ मिश्र एवं साथ में संस्था के अध्यक्ष डॉ. कुमार ऋषितोष एवं आयोजन सचिव जागृति

वायलिन पर श्याम कल्याण राग की अवतारणा करते हुए उ. असग़र हुसैन एवं तबला पर संगत पं. आशीष सेनगुप्ता

चक्रदार महोत्सव में मंच संचालन हेतु आमंत्रित प्रसिद्ध संगीत समीक्षक, लेखक एवं तबला वादक पं. विजय शंकर मिश्र ने कहा कि गायन की अलग अलग विधाओं को लेकर, ध्रुपद पर ख्याल पर ठुमरी यहाँ तक की नृत्य के विभिन्न विधाओं को लेकर उनपर केंद्रित कार्यक्रम होते रहे हैं लेकिन हमारे यहाँ तबला एवं पखावज को आजतक संगति वाद्य मानकर और उनको हाशिये पर रखा जाता है। अभी तक चक्रदार के नाम से कोई महोत्सव नहीं हुआ है। कोरोना के संक्रमण काल में जो समय गया है उसमे बहुत सारे कलाकारों ने इलेक्ट्रॉनिक इंस्ट्रूमेंट के साथ संगत किया जिससे कलाकारों के मन में भय भी आ गया की मूल कलाकारों का क्या अस्तित्व रहेगा उसको देखते हुए इस तरह का एक आयोजन करना जो सिर्फ तबला एवं पखावज पर केंद्रित है। तबला एवं पखावज एक सुर का साज़ है, उसमे शब्द नहीं है, अभिनय नहीं है उसमे भाव नहीं है उसके बावजूद इतना रोचक, आकर्षक और रोमांचक कार्यक्रम ये कलाकारों की अपनी प्रतिभा है अपनी सृजनशीलता है की यहाँ इतने तबले बजे और हर तबला एक दूसरे से अलग। ये घरानो की देन है और सबसे बड़ी बात यह है की महान तबला सम्राट पंडित अनोखे लाल मिश्र जी एवं पंडित छोटेलाल मिश्र जी का आशीर्वाद इस समारोह को मिलता रहा। डॉ. कुमार ऋषितोष जो पंडित छोटे लाल मिश्र जी के सुयोग्य शिष्य हैं और इस कार्य को बहुत अच्छी तरह से आगे बढ़ा रहे हैं। खुद अच्छे तबला वादक हैं लेकिन उसके बावजूद दूसरे तबला वादकों को इतना मौका देना इस लॉक डाउन से उभरकर इतना खर्च करना। अभी सबसे ज्यादा मार संगीतकारों पर गिरी है। उसमे इस तरह का भव्य आयोजन के लिए वे अत्यंत बधाई एवं साधुवाद के पात्र हैं।

चक्रदार महोत्सव का समापन दिल्ली के त्रिवेणी सभागार में 31 मार्च 2023 को सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का आरंभ दिल्ली घराने के मशहूर वायलिन वादक जनाब असग़र हुसैन द्वारा राग श्याम कल्याण और पहाड़ी की सुन्दर प्रस्तुति दी गई। झपताल विलम्बित एवं द्रुत तीनताल में आलाप के साथ तानों की तैयारी, लय की विविधता के साथ राग की शुद्धता आपकी विशेषता है। आपके साथ तबले पर पं आशीष सेनगुप्ता ने कुशल संगत प्रदान की। तत्पश्चात 6 वर्षीय बाल कलाकार मास्टर प्रियतोष का आकर्षक स्वतंत्र तबला वादन हुआ। जिसमे बनारस घराने के पारम्परिक उठान एवं कुछ खास टुकड़ा और चक्रदार की प्रस्तुतियों से माहौल को रोमांचित कर दिया।

कार्यक्रम का अंतिम आकर्षण बनारस घराने के प्रसिद्ध गायक पंडित भोलानाथ मिश्रा का प्रभावशाली शास्त्रीय गायन से हुआ। आपने राग बागेश्री में रचना 'आनंद भयो' जो विलम्बित एकताल में निबद्ध थी से शुरुआत की। द्रुत एकताल में रचना 'पकड़त मोरी बइयाँ श्याम' और तीनताल में 'बलि बलि जाऊँ सजनी' की भावप्रवण प्रस्तुति से दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर दिया। मुख्य अतिथि रहे आईसीसीआर के निदेशक श्री वाय.एल.राव द्वारा संस्था के तरफ से पं. भोलानाथ मिश्र एवं उ. असग़र हुसैन को 'नाद रत्न' सम्मान प्रदान किया गया। इस महोत्सव के मंच संचालन में कला समीक्षक श्रीमती शशिप्रभा तिवारी एवं श्री कुलदीप शर्मा की विशेष भूमिका रही। इस प्रकार देश के विभिन्न भागों में आयोजित एवं गुरु को समर्पित 'चक्रदार महोत्सव' सरगम रूपी सात आवृति की भव्य प्रस्तुति के साथ 'धा' के वज़न की तरह पूरे जोश एवं उत्साह के साथ मनाया गया। जिसमें देश के विभिन्न भाग से आए कलाकार ने अपनी नाद के माध्यम से नादऑरा में अपनी आभाभिखेरी। कुल मिलाकर चक्रदार महोत्सव की खूबसूरत प्रस्तुतियों ने अपसंस्कृति के बरखिलाफ अपनी विरासत को बचाने, सहेजने और प्रस्तुत करने का जो नायाब व सराहनीय प्रयास किया, वह काबिल-ए-दाद और स्मरणीय बन गया, इसमें किंचित सन्देह नहीं।

- आचार्य जागृति

(कला समीक्षक, योग गुरु, आयोजक) मो. 8700754310

■

डॉ. जवाहर कर्नावट का शोध कार्य लिम्का बुक आफ रिकॉर्ड्स 2023 में शामिल

मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध लेखक एवं वक्ता डॉ. जवाहर कर्नावट द्वारा 27 देशों की 120 वर्षों की हिंदी पत्रकारिता पर किए गए शोध कार्य को लिम्का बुक आफ रिकॉर्ड्स 2023 में शामिल किया गया है द्य वैश्विक स्तर पर हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के इस अनूठे संकलन और सामग्री विश्लेषण के कार्य को करने वाले वह एकमात्र व्यक्ति है। लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स द्वारा जारी प्रमाण पत्र में दर्शाया गया है कि डॉ कर्नावट के पास दक्षिण अफ्रीका से सन् 1903 में 4 भाषाओं- हिंदी, गुजराती ,तमिल और अंग्रेजी में प्रकाशित इंडियन ओपिनियन संग्रह में सबसे पुराना समाचार पत्र है। डॉ. कर्नावट के इस शोध कार्य को भारत सरकार के नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। उन्हें इस अनूठे शोध कार्य के लिए ही पिछले दिनों फिजी में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत के विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर और फिजी के प्रधानमंत्री श्री बिमन प्रसाद द्वारा विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके अलावा हाल ही में उन्हें केन्या की राजधानी नैरोबी में आयोजित सम्मेलन में भी सम्मानित किया गया।

रोटरी क्लब पन्ना उदयपुर एवं एम. स्क्वायर प्रोडक्शन द्वारा आयोजित ज़ार अवॉर्ड्स में डॉ एस. के. अग्रवाल का सम्मान

राजस्थान कोटा के प्रख्यात पर्यावरण विद, वनस्पति विज्ञान के विभागाध्यक्ष एवं जा .दे. ब.कन्या महाविद्यालय कोटा के पूर्व उपाचार्य - स्वर्गीय डॉ एस.के. अग्रवाल को उनके अतुलनीय योगदान के लिए उदयपुर में किंग के ख़िताब से नवाज़ा गया। डॉ. अग्रवाल ने शोधार्थियों के लिए पर्यावरण व प्रदूषण विषय की 49 पुस्तकें लिखीं, 'एक्टाइकोलॉजीका' नामक अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका का लगातार 15 वर्षों तक प्रकाशन किया। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्रीमान हरिदेव जोशी के सलाहकार मंडल के सदस्य रहे, अनेक छात्र छात्राओं को पीएचडी कराई।

आप की स्मृति में राजकीय महाविद्यालय कोटा के वनस्पति विज्ञान विभाग में 524 पुस्तकों का दान किया गया तथा प्रति वर्ष एमएससी प्रीवियस में प्रवेश हेतु लिस्ट में सर्वोच्च अंक पाने वाले तथा प्रीवियस की परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को वजीफा प्रदान किया जाने का परिवार जनों द्वारा प्रबंध किया गया।

डॉ. अग्रवाल की इन उपलब्धियों हेतु रोटरी क्लब पन्ना उदयपुर द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया जिसे उनकी पत्नी कला पुरोधा श्रीमती सुधा अग्रवाल ने ग्रहण किया मुख्य अतिथि एम एल ए वल्लभनगर श्रीमती प्रीति गजेंद्र सिंह शक्तावत एवं पास्ट डिस्ट्रिक्ट गवर्नर 3054 निर्मल सिंघवी थे। इस अवसर पर उनकी पुत्री डॉ. स्मिता बैराठी भी उपस्थित थीं।

समवेत

अश्विनी कुमार दुबे की दो पुस्तकें 'भारत, इतिहास-संस्कृति-धर्म' और 'रास्ता इधर से भी है' का लोकार्पण

न्यू भूमिका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था द्वारा आयोजित पुस्तक लोकार्पण कार्यक्रम की अध्यक्षता मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ विकास दवे ने किया। मुख्य अतिथि विश्व स्तर पर हिंदी का परचम लहराने वाले डॉ जवाहर कर्नावट ने किया। विद्वान वक्ता के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार गोकुल सोनी एवं लघुकथा शोध केंद्र की निदेशक श्रीमती कांता रॉय भी मंचासीन रहे।

सरस्वती वंदना सुषमा श्रीवास्तव ने प्रस्तुत की। स्वागत उद्बोधन वरिष्ठ साहित्यकार सुरेश पटवा ने चुटीले अन्दाज़ में किया। संस्था की उपाध्यक्ष डॉ अनीता सिंह चौहान ने लेखक अश्विनी कुमार दुबे की साहित्यिक यात्रा पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम का सुचारू संचालन संस्था के सचिव प्रसिद्ध उपन्यासकार चंद्रभान राही ने किया।

समारोह के अध्यक्ष डॉ विकास दवे ने कहा कि शैक्षणिक पाठ्यक्रम में जीवन मूल्यों और शाश्वत आचरण मूल्यों का समावेश होना चाहिए। ये दोनों पुस्तकें शाश्वत जीवन मूल्यों की वकालत करती हैं। इन्हें पाठकों का प्रतिसाद अवश्य मिलेगा।

मुख्य अतिथि डॉ जवाहर कर्नावट ने कहा कि विदेशी भी मानते हैं कि भारत का साहित्य और संस्कृति अद्भुत है। जिसका एक परिचय अश्विनी कुमार दुबे की पुस्तकों में मिलता है। ये किताबें हिन्दी साहित्य की विरासत बनने की योग्यता रखती हैं।

लेखक अश्विनी कुमार दुबे ने अपनी रचनाधार्मिता और दोनों पुस्तकों के लेखन और उनसे जुड़े अहसासों को रेखांकित किया। उन्होंने नए भारत के नए आदर्श धारण करने वाले व्यक्तित्वों के गुणों को युवा पीढ़ी द्वारा अपनाने की आवश्यकता प्रतिपादित किया।

गोकुल सोनी ने उपन्यास 'रास्ता इधर से भी है' का समीक्षात्मक विवेचन किया। उन्होंने कहा कि साहित्य में दो प्रकार के मूल्य होते हैं- सामयिक मूल्य और शाश्वत मूल्य। सामयिक मूल्य समय के साथ बदल जाते हैं। जबकि शाश्वत मूल्य अक्षुण्य रहते हैं। यह उपन्यास शाश्वत मूल्यों की स्थापना करता है।

कांता रॉय ने दूसरी किताब 'भारत इतिहास-संस्कृति-धर्म' पर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए बताया कि यह किताब भारत की प्रधान प्रकृति की रूपरेखा रेखांकित की है। दोनों किताबें सरल सुबोध और रोचक अन्दाज़ में लिखी गई हैं।

लोकार्पण समारोह में भोपाल के अनेक प्रबुद्ध साहित्यकार जैसे डॉ गौरी शंकर शर्मा 'गौरीश', डॉ मुहम्मद आज़म, चरण जीत सिंह कुकुरेजा, डॉ अनीता सिंह चौहान, अशोक धमेनिया, ब्रिज भूषण शर्मा, अशोक व्यग्र, कर्नल गिरिजेश सक्सेना, डॉ मीनू पांडेय, शिवांश सरल, प्रेम चंद गुप्ता, रूपाली सक्सेना, संजय सक्सेना, कमलेश गुल, मंजुल प्रकाशन के कपिल सिंह आदि उपस्थित रहे। सुरेश पटवा ने लेखक अश्विनी कुमार दुबे को अपनी पुस्तक 'गुलामी की कहानी' और चंद्रभान राही ने अध्यक्ष और मुख्य अतिथि को उपन्यास 'मन्नत' भेंट किए। अंत में विवेक रंजन श्रीवास्तव ने लोकार्पण कार्यक्रम में उपस्थित नगर के साहित्यकारों और आदरणीय मंच का आभार व्यक्त किया।

रपट- गोकुल सोनी

■

साक्षात्कार

पंडित रविशंकर जी का आर्शीवाद मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ -किरण देशपाण्डे

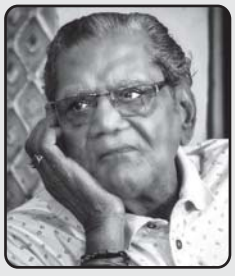

जगदीश कौशल

हमारे देश की भारतीय संस्कृति में अपने गुरुजनों से आर्शीवाद प्राप्त करने की प्राचीन परम्परा सदियों से चली आ रही है। गुरुजनों का आर्शीवाद युवापीढ़ी के भावी जीवन में वरदान सिद्ध होते रहे हैं. ऐसा ही कुछ मध्यप्रदेश के सुविख्यात तबलावादक पंडित किरण देशपाण्डे जी के जीवन में भी हुआ है तो आइए सुनते है पंडित जी से ही उनको तबलावादन और गायन के क्षेत्र में मिली सफलता की रामकहानी उन्हीं की जुबानी-

- **पंडित देशपाण्डे जी आपका जन्म कहाँ हुआ और आपकी संगीत शिक्षा-दीक्षा कैसे हुई ?**

– नमस्कार कौशल जी, मेरा जन्म विदर्भ अचंल के एक छोटे से गांव में हुआ जिसकी पापुलेशन लगभग 250-300 के लगभग रही होगी। वहाँ हमारा पैतृक घर था खेती का धन्धा था. मेरे पिताली नौकरी करने जबलपुर आ गये थे वह एक मराठी स्कूल में संगीत के शिक्षक थे. मै एक वर्ष का था तभी जबलपुर आ गया था।

- **आप किस सन् में जबलपुर आए और कब तक जबलपुर में रहे ?**

– मेरा जन्म 28 जून 1940 में हुआ और मेरा ख्याल है कि सन् 1941 में मैं जबलपुर आ गया था।

- **संगीत के प्रति आपको रूचि कैसे हुई क्या आपके परिवार में रहे संगीत के वातावरण ने आपको प्रभावित किया ?**

– मेरा जन्म सगीतज्ञों के परिवार में हुआ है मेरे पिताजी बहुत अच्छे गायक थे, मेरे छोटे अॅकल भी बहुत अच्छे गायक थे मेरे पिता जी का नाम सदाशिव देशपाण्डे और चाचाजी का नाम सखाराम देशपाण्डे था हमारे परिवार का वातावरण एकदम संगीतमय था. मेरी बहनें भी बहुत अच्छा गाती थी इस कारण स्वर ताल और लय के प्रति बचपन से ही मेरा विशेष रूझान रहा तबलावादन में मेरी विशेष रूचि रही।

- **कृपया अपनी स्कूली-महाविद्यालयीन शिक्षा और तबला वादन और गायन की शिक्षा के बारे में विस्तार से बतायें ?**

– कौशल जी, शिक्षा तो जीवन का आवश्यक अंग माना जाता है. मेरी स्कूली शिक्षा और संगीत की शिक्षा (तबलावादन एवं गायन) एक साथ चलती रही वस्तुत: 17 अप्रैल 1957 में जब मैं इंटरमीडिएट की पढ़ाई कर रहा था तब मुझे भारत सरकार द्वारा आयोजित अखिल भारतीय ''प्रतिमा खोज'' प्रतियोगिता में तबलावादन कला का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था साथ ही 250 रूपये मासिक की स्कालरशिप प्राप्त हुई थी. तब मेरे पिताजी ने मुझे सुविख्यात तबलावादन उस्ताद दाउद खाँ साहब के पास हैदराबाद भेज दिया था. मेरे चाचाजी हैदराबाद में रहकर मैंने तबलावादन के साथ ही गायन कला की अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की मुझे इस बात का गर्व है कि मै दिल्ली घराना के सुविख्यात तबला सम्राट् उस्ताद दाउद खाँ साहब का शिष्य हूँ।

- **मेरी जानकारी है कि आपको विश्व विख्यात सितारवादक भारत रत्न पंडित रविशंकर जी के साथ**

तबले पर संगत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कृपया इस सुखद अवसर पर विस्तार से प्रकाश डालने का कष्ट करें ?

– हमारे जबलपुर में एक सज्जन पटेरिया जी थे जो रविशंकर जी के मित्र थे उनके घर उनका आना जाना हुआ करता था एक बार वह जबलपुर आए हुए थे तब पटेरिया जी का मेरे पिताजी के पास फोन आया कि आज पं. रविशंकर जी का उनके घर पर कार्यक्रम है उनके साथ तबला कौन बजायेगा ? आपका बेटा किरण बजायेगा क्या ? इस तरह मुझे अपनी शैशवास्था में ही उनके साथ तबला बजाने का सुअवसर प्राप्त हुआ था मैंने उनके साथ बजाया और कार्यक्रम समाप्त होने के बाद उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई और मुझे आर्शिवाद दिया कि बेटा तुम नाम कमाओंगे ऐसे ही रियाज करते रहो– मेरे पिताजी को भी हार्दिक बधाई दी कि आपका बेटा बहुत होनहार है यह निश्चय ही आपके परिवार का नाम देश–विदेश में रोशन करेगा आज भी मैं यह मेहसूस करता हूँ कि उनका आर्शीवाद मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ हैं।

सर्म्पक सूत्रः– ई 320/3 अरेरा कालोनी
मो. 9425393429

प्रसंगवश

रामचरितमानस और दरबारी राग

–डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

साहित्य की कसौटी राजनैतिक–मतवाद नहीं, लोकमानस है। इसलिए साहित्य स्वभाव से ही लोक का पक्षधर होता है। दरबारी राग भी होता तो है किन्तु वह सत्ता की खुशामद का राग होता है, दरबारियों के लिए पद और पुरस्कार का राग होता है, एक प्रकार से वह लोक के विरुद्ध होता है, वह लोक की सत्ता को विखंडित करता है, विच्छिन्न करता है। लोकजीवन की सहज एकता को तोड़ने वाला होता है। उसके पीछे उसका स्वार्थ छिपा हुआ होता है।

स्वतन्त्रता–आन्दोलन की राजनीति राष्ट्र की एकता के लिए थी, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद की राजनीति इस एकता के विरुद्ध खड़ी हो गयी। उसकी कहानी बहुत लंबी है, लेकिन संक्षेप में उसकी दिशा और गति लोकजीवन की एकता और लोकमंगल के विरुद्ध है, उसकी दिशा केवल और केवल राजसत्ता है। इस राजनीति के साथ साहित्य का दरबारी राग भी बदला और नये नये रूपों में सिद्धान्त बघारने लगा। पद भी पाया और पुरस्कार के तन्त्र पर भी अधिकार जमा लिया। विश्वविद्यालयों में ऐसे दरबारी राग का साम्राज्य–विस्तार हुआ। लोकजीवन से दूर चला गया, परन्तु लोकजीवन से उसे लेना भी क्या था ? साहित्य में यह राजनीति का आक्रमण था और इसका प्रवेश आलोचना के माध्यम से हुआ। लोकमंगल का साहित्य–सृजन तो दरबारी राग के बूते की बात थी नहीं, वह आलोचना के माध्यम से ही आ सकता था, आया भी। राजनीति ने उसे हजार हाथोंसे उपकृत किया। उसका दुस्साहस इतना बढ़ा कि वह नित–नित लोक–नमस्कृत महाकवियों को भी फ़ेल–पास करने लगा। हालाँकि उसके पास उनके जैसी एक पंक्ति भी लिखने की औकात नहीं थी, जो लोकस्वीकृत हो सके।

उस कठोर जमाने में जब 'लोग सीद्यमान सोच बस' थे, जनता के पक्ष में था ही कौन ? ये भक्तिकाल के आचार्य मनीषी महाकवि ही तो थे, जिन्होंने लोकजीवन को विश्वास का आधार दिया था। मंगलभवन अमंगल हारी !तुलसीदास के लोटा सोटा भी चुरा लिये गये थे। उन पर कम आक्रमण हुआ था क्या ? ये बेचारे आलोचक उस परिस्थिति को समझ सकेंगे ?सोचिय विप्र जो वेद न जाना। तुलसीदास ने बादशाही जमाने में कहा– **सोचिय नृपति जो नीति न जाना।**

जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

वह शासक निश्चित ही चिन्ता के योग्य है , जिसे अपने देश और प्रदेश की जनता अपने ही प्राणों के समान प्रिय नहीं है। वह शासक अवश्य ही चिन्तनीय है, जो नीति को नहीं जानता है, जिसमें नैतिकता नहीं है।

तुम शोध करते रहे थे कि तुलसीदास वर्णवादी हिन्दू थे ? लेकिन तुम कभी समाज के निचले स्तर पर उतरे ही नहीं, वह स्वर सुन नहीं सके, जो सारे दायरे तोड़ कर लोकजीवन के आंगन में आज भी गूंज रहा है–

मंगलभवन अमंगल–हारी।

आज भी काव्य की उस कसौटी का कोई दूसरा विकल्प नहीं है – सुरसरि सम सबकर हित होई।

शोध का आपका उद्देश्य शत्रुताएं बढाते रहना है ?

तुम्हारी बगल में बिरादरी का सांप बैठा है !

उस जमाने में रहीम ने कह दिया था –

रामचरितमानस विमल, सन्तन जीवन–प्रान।

हिन्दुआन कों वेद सम, यवनहिं प्रकट कुरान।

किन्तु दुर्भाग्य यह है कि अभी अभी एक प्रदेश के मन्त्री ने वोट की राजनीति करने के लिए राष्ट्र की लोकचेतना को छिन्न–विच्छिन्न करने के अपने सदाव्रत के लिए रामचरितमानस का सवाल उठाया, तो दरबारी राग भी अलाप। भरने लगा। बहस करना उसका पेशा है, इसके अलावा वह कर भी क्या सकता है ? परन्तु वह उपेक्षा के योग्य है क्योंकि लोकजीवन से उसका कोई नाता–रिश्ता है नहीं, लोकजीवन में उसकी रीझ बूझ भी कानी कौड़ी बराबर है।

रामचरित मानस की कसौटी तो प्रेम है, शबरी और केवट है, निषाद है, वानर जैसी वनवासी जातियां हैं, हाँ तुम अपने मतलब के लिए नफरत पैदा करते हो, नफरत बढाते हो और देश की राजनीति को गर्त में ले आये हो।

■

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

पंडित किरण देशपाण्डे

जन्म: 28 जून 1940

28 जून 1940 के दिन विदर्भ अचंल के एक छोटे से गाँव में जन्मे पंडित किरण देशपाण्डे का बचपन से ही तबला वादन और ताल लय के प्रति विशेष रूझान रहा है आपने स्कुली शिक्षा के दौरान भारत सरकार द्वारा आयोजित राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिभा खोज प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर छात्रवृत्ति अर्जित की फलस्वरूप आपको दिल्ली घराने के सुविख्यात तगला नवाज उस्ताद शेख दाउद खाँ की शार्गिदगी में तबला वादन की शिक्षा प्राप्त हुई युवा अवस्था में ही आपको विश्व विख्यात सितार वादक पंडित रवि शकंर जी के साथ तबले पर संगत करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ आपने अंग्रेजी साहित्य और संगीत की गायन विद्या में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की है मध्यप्रदेश शासन के नूतन महाविद्यालय, भोपाल से लंबे समय तक संगीत विभागाध्यक्ष रहते हुए संगीत शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है. देश और विदेश में आयोजित अनेक संगीत समारोह को सुविख्यात गायको और वादकों के साथ तबले पर संगत करने का श्रेय भी आपने अर्जित किया है। संगीत नाटक अकादमी से अमृत पुरस्कार, मध्यप्रदेश शासन का शिखर सम्मान, तानसेन समारोह में सम्मान के अलावा अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं भारत भवन, भोपाल म.प्र. कला परिषद, उत्पाद अलाउद्दीन खाँ अकादमी के अलावा दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से भी आप वर्षों से जुड़े हुए हैं आजकल आपने ''संगीत विद्यादान'' का विशेष अभियान चलाया हुआ पंडित किरण देशपाण्डे जी का तबला वादन का यह फोटो एवं साक्षात्कार भोपाल के सुविख्यात वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल द्वारा लिया गया हैं।

■

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री सीखो-कमाओ योजना

शिवराज सरकार की अनुपम सौगात
सीखना-कमाना अब होगा साथ-साथ

- 46 क्षेत्रों के 800 से अधिक पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण, इनमें विनिर्माण, इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रिकल, मैकेनिकल, सिविल, प्रबंधन, मार्केटिंग, होटल मैनेजमेंट, टूरिज्म, ट्रेवल, अस्पताल, रेल्वे, आईटी, साफ्टवेयर डेवलपमेंट, बैंकिंग, बीमा, लेखा, चार्टर्ड अकाउंटेंट, मीडिया, कला, कानूनी, विधि सेवाएं व अन्य सेवा क्षेत्र शामिल।
- 18 से 29 वर्ष के 10वीं-12वीं पास, आईटीआई, स्नातक व स्नातकोत्तर युवा पात्र।
- प्रशिक्षण के दौरान 8 से 10 हजार रुपये तक स्टायपेंड।
- 15 जून से पंजीयन एवं 15 जुलाई से प्लेसमेंट।
- पंजीयन के लिए https://mmsky.mp.gov.in/ पोर्टल विजिट करें।

D-19157/23

मध्यप्रदेश शासन

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2023

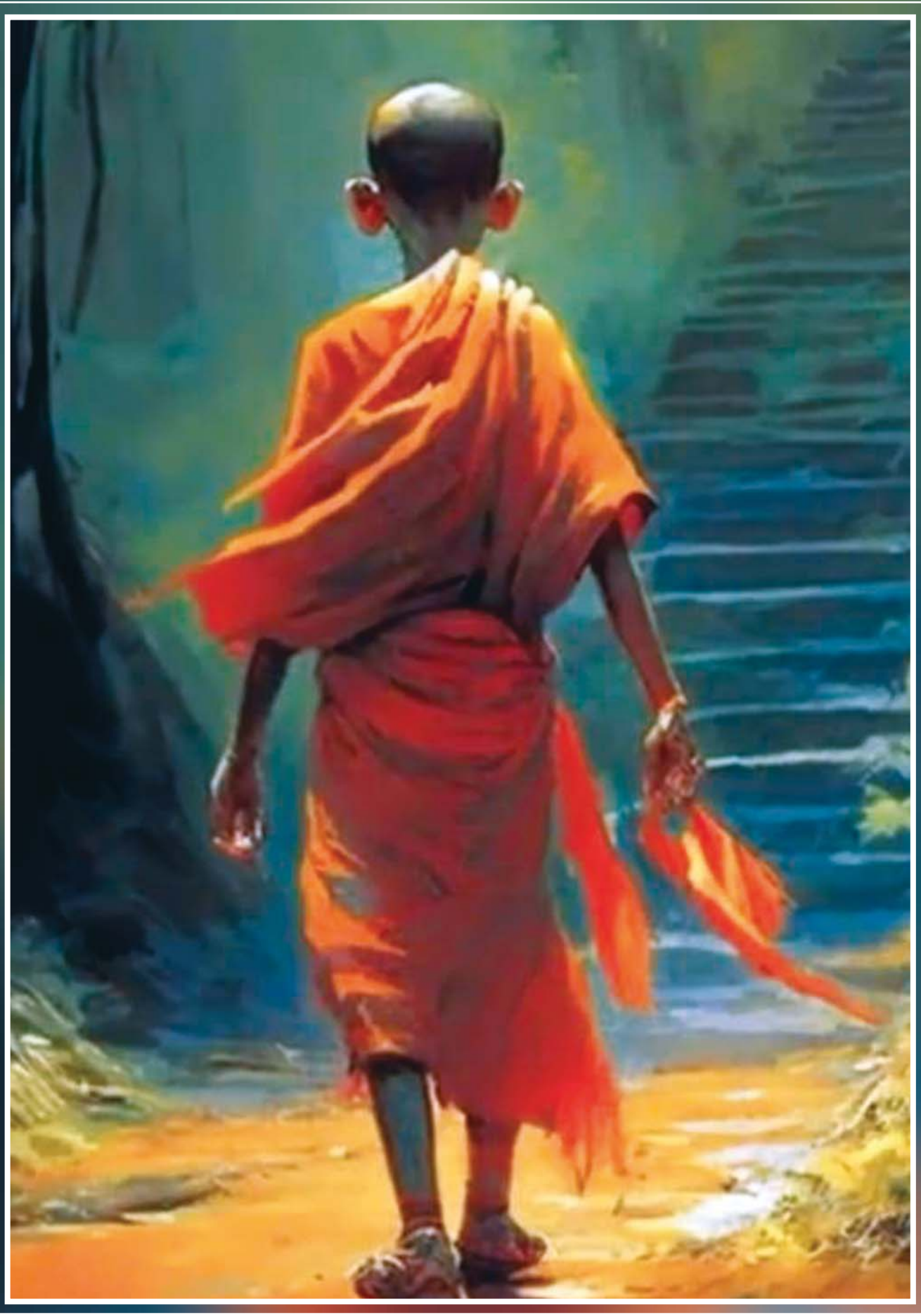

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास